भारत और कम्बुज

बी.एन. पुरी

भारत-कम्बुज

...न भारत अपनी विद्या, वैभव और संस्कृति के लिये प्रसिद्ध ... यहाँ के विद्वान, व्यापारी तथा कुछ क्षत्रिय पर्यटन एवं ...र के लिये विदेश जाया करते थे। कम्बुज - वर्तमान ...चिया, एक ऐसा देश था जहाँ कौण्डिन्य नामक ब्राह्मण ने ... की प्रथम शताब्दी में, वहाँ की रानी सोमा से विवाह कर ... भारतीय राज्य की स्थापना की। यह भारतीय उपनिवेश ...होकर एक बड़ा साम्राज्य बना जिसकी सिमाएँ हिन्द-चीन ...विस्तृत थी। दक्षिण-पूर्वी एशिया में यह भारतीय संस्कृति का ...दी की २५ वीं शताब्दी तक केन्द्र बना रहा।

अंकोरवाट तथा केऔन के मन्दिर भारतीय कला-कृतियों ...लिए आज भी विश्व में प्रसिद्ध हैं। प्राप्त अवशेषों, शिलालेखों, ...हित्य ... क्षेत्रों के आधार पर कम्बुज देश के इतिहास ... का इस ग्रंथ में पूर्णतया अध्ययन किया गया है।

...-7388-049-2

रु० १२५/ मात्र

प्राक्कथन

प्राचीन भारत अपनी विद्या, वैभव एवं संस्कृति के लिए प्रसिद्ध था। यहां के विद्वान, व्यापारी तथा कुछ क्षत्रिय पर्यटन एवं व्यापार के लिए विदेश जाया करते थे। कम्बुज-वर्तमान कम्पूचिया, एक ऐसा देश था जहां कौण्डिन्य नामक ब्राह्मण ने इसवी की प्रथम शताब्दी में, वहां की रानी सोमा से विवाह कर एक भारतीय राज्य की स्थापना की। यह भारतीय उपनिवेश न होकर एक बड़ा साम्राज्य बना जिसकी सीमाए हिन्द-चीन में विस्तृत थीं। दक्षिण-पूर्व एशिया में यह भारतीय संस्कृति का ईसवी की २५ वी शताब्दी तक केन्द्र बना रहा। अंकोरवाट तथा केपोन के मन्दिर भारतीय कला-कृतियों के लिए आज भी विश्व में प्रसिद्ध हैं। प्राप्त अवशेषों, शिलालेखों, साहित्य तथा अन्य स्रोतों के आधार पर कम्बुज देश के इतिहास तथा संस्कृति का इस ग्रन्थ में पूर्णतया अध्ययन किया गया है।

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण लगभग ३६ वर्ष पहिले छपा था। पुस्तक को हिन्दी समिति,उत्तर प्रदेश द्वारा पुरस्कृत भी किया गया था तथा स्व० पण्डित नेहरू ने भी **भारत और कम्बुज** विषय पर लिखने के प्रयास को एक पत्र में सराहा। यह प्रथम संस्करण एक दशक पूर्व समाप्त हो गया। और नये संस्करण के प्रकाशन की आवश्यकता पड़ी। युवक प्रकाशक राहुल सिंघल ने शीघ्र ही इसके प्रकाशन का भार लिया। यह हर्ष का विषय है कि प्राचीन भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों के लिए अब यह उपलब्ध है। आशा है कि यह उनके लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

ब ५८,सेक्टर २३
महानगर लखनऊ
१८.१.१९९४

बैजनाथपुरी

विषय-सूची

(प्रथम खण्ड)

(द्वितीय खण्ड)

प्राचीन कम्बुज राज्य

अध्याय १

भारत और कम्बुज

प्राचीन कम्बुज देश वर्तमान कम्बोडिया और कोचीन-चीन तथा मेकांग नदी की दक्षिणी घाटी और दंगरेक पहाड़ियों को मिलाकर सम्पन्न था। इसकी सीमायें भिन्न-भिन्न समय में बदलती रहीं और विस्तृत काल में इस साम्राज्य में स्याम, कम्बोडिया, लाओस, कोचीन-चीन तथा मेकांग और मीनम नदियों की घाटियाँ सम्मिलित थीं।[1] मेकांग नदी कम्बुज निवासियों के लिए वैसी ही रही है जैसे भारत के लिए गंगा और मिश्र के लिए नील नदी।[2] देश की सम्पन्नता में इस नदी का बड़ा भाग है। जहाँ-जहाँ तक इसकी बाढ़ का पानी जाता है वह भूमि उपजाऊ है, अन्यथा देश का भाग ऊसर है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हम कम्बुज देश को

१—पहिले फ्रांसीसी हिन्द-चीन में टोंकिन, अनाम, कोचीन-चीन, कम्बुज तथा लाओस सम्मिलित थे। अब कम्बुज पूर्णतया स्वतन्त्र हो गया है और संयुक्त राष्ट्र परिषद् का सदस्य भी निर्वाचित कर लिया गया है।

२—कुछ विद्वानों का विचार है कि इस नदी का नाम दो शब्दों के आधार पर है—'में' जिसके अर्थ 'मुख्य' अथवा 'माँ' है, तथा 'कोंग' जो कदाचित् गंगा से लिया गया है। अतः दोनों शब्दों को जोड़ने से इसका नाम माँ गंगा अथवा गंगा माता पड़ा। इस कारणवश इस नदी की समानता भारतीय गंगा से की गई। यह अवश्य मानना पड़ेगा कि गंगा की भाँति इस नदी का देश की समृद्धता में बड़ा भाग है (देखिये लेक्लेर : कम्बोज, पृ० २ नोट १; मजुमदार : कम्बुज देश, पृ० ११, नोट ६)।

हिन्द-चीन से पृथक् नहीं कर सकते हैं क्योंकि इस साम्राज्य की सीमायें दूर-दूर तक फैली हुई थीं और उत्तर-पश्चिमी भाग में क्रमशः इसके पड़ौसी चीन और भारत थे जिनके साथ इस देश का स्थल मार्ग द्वारा सम्बन्ध था। पूर्व और दक्षिण के समुद्र-तट पर अनेक बन्दरगाह थे जहाँ से जल-मार्ग द्वारा यात्रा की जा सकती थी। प्रायः जल-मार्ग ही अधिक सुगम था क्योंकि कम्बुज तथा उसके आधीन और निकटवर्ती देशों में पहाड़ियों के कारण स्थल मार्ग में कठिनाई थी। इन पहाड़ियों की अपेक्षा नदियों के किनारे तथा मुहानों के निकट की भूमि बहुत उपजाऊ रही है और यहीं से हिन्दू सभ्यता का इस देश में प्रवेश हुआ।

भिन्न जातियाँ—इस समृद्धिशाली देश में प्राचीन काल से न तो भौगोलिक और न जातीय एकता रही है। यहाँ के लोग दो भिन्न वर्ग के हैं जिन्हें तिब्बती-बर्मी तथा मों-ख्मेर कहकर सम्बोधित कर सकते हैं। तिब्बती-बर्मी वर्ग में वह मंगोल जातियाँ सम्मिलित हैं जो उत्तरी ब्रह्मा में पहिले रहती थीं और जिनकी समानता पूर्वी भारत की अबोर और मिस्मी जातियों से की जा सकती है। मों-ख्मेर से उन दो मुख्य जातियों का संकेत किया जाता है जो मोनस और ख्मेर के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनकी भाषा की समानता भारत की मुण्ड तथा खसी और मलाया की मेमंग और सकाई से की जा सकती है। मों दक्षिणी ब्रह्मा के निवासी थे और मीनाम की घाटी होते हुए वे स्याम पहुँचे। ख्मेर कम्बुज में जा बसे और पश्चिम की ओर से स्याम में उन दोनों का सम्पर्क स्थापित हुआ। इनके अतिरिक्त इस विस्तृत क्षेत्र में प्राचीन चम्पा

(वर्तमान अनाम) के निवासी चम कहलाते थे, और मलय निवासियों ने अपने जातीय नाम से इस प्रान्त को सम्बोधित किया जो आजकल मलाया कहलाता है। इन्हीं के वंशजों से अथवा इसी वर्ग के लोगों ने पूर्वी सुमात्रा, बाली इत्यादि में भी अपना आधिपत्य स्थापित किया।[१]

स्मिट के मतानुसार[२] हिन्द-चीन और हिन्देशिया के

१—डिक्सन का कथन है कि पूर्व के आस्ट्रोलायड़ और पश्चिम के प्रोटोनिग्रायड़ हिन्द-चीन और भारत में मिले और यह निग्रायड़ कहलाये और इनके कैस्पियन—भूमध्य (कौकसायड) तथा मंगोली रक्त मिश्रण से हिन्दनेशी बने (देखिये अमरीकी ओरण्टियल सभा की पत्रिका भाग ६५, १९४५, पृ० ५६)।

२—स्मिट ने आस्ट्रो-एशियाटिक वर्ग का सम्बन्ध आस्ट्रो-निशियन से स्थापित किया है। भाषा के आधार पर उसने आस्ट्रिक नामक एक बृहत् क्षेत्र की धारणा की है। इसके अनुसार हिन्द-चीन तथा हिन्देशिया के निवासी इसी वर्ग के हैं जिसमें मुण्ड उत्तरी-पूर्व भारत के खस, तथा मध्य भारत की और जातियों को रखा जा सकता है। स्मिट ने आस्ट्रो-एशियाटिक भाषाओं को तीन वर्गों में रक्खा—एक में संस्कृत शब्द का पूर्णतया अभाव है, दूसरे में कदाचित् एक है, और तीसरे में—जिसमें मों-ख्मेर तथा मुण्ड है—तीनों शब्द संस्कृत के पाये जाते हैं। (देखिये सुदूर-पूर्व की फ्रांसीसी स्कूल की पत्रिका भाग ७, पृष्ठ २१३-२६३, भाग ८, पृ० ३५; स्मिट के विचारों पर बहुत से विद्वानों ने टीका-टिप्पणी की है। ब्रिग्स ने अपने एक लेख 'प्रोफेसर डिक्सन तथा पीटर स्मिट के विचार कितने रूढ़िवादी हैं' में स्मिट के विचारों को अवैज्ञानिक प्रमाणित करने का प्रयास किया है। उनका कथन है कि हिन्द-चीन में फ्रांसीसी विद्वानों तथा पुरातत्त्वज्ञों द्वारा खुदाई में प्राप्त मनुष्यों के अवशेषों से पता चलता है कि वे प्रोटो-आस्ट्रोलायड़, पपुअन, प्रोटो-मेलानेसियन, नेगरिटो, तथा प्रोटो-इण्डोनेशियन वर्ग के थे। नेगरिटो

प्राचीन निवासी जिनमें मौं, ख्मेर, चम और मलय सम्मिलित हैं, उसी वर्ग के थे जिसके भारतीय मध्य और पूर्व भारत के मुण्ड तथा उनसे मिलती हुई अन्य जातियाँ और खस को रखा जा सकता है। इस विद्वान् के विचार में इन सब जातियों का उद्गम स्थान भारत ही था और यहीं से यह बाहर गये। लेवी महोदय[१] भी स्मिट के मत से सहमत हैं, किन्तु डच पुरातत्त्वज्ञ क्रोम[२] का कहना है कि पहले जावा निवासी भारत में आकर बसे और उसके बाद वहाँ के लोग सुदूरपूर्व देशों में गये। इस विषय में विद्वानों ने बहुत कुछ लिखा है किन्तु निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है।[३] हाँ, भाषा की समानता यह निर्धारित करती है कि सुदूरपूर्व और

को छोड़कर, जो विशेष महत्त्व नहीं रखते, बाकी सब डोलीसोफेलिस हैं। (देखिये अमरीकी ओरण्टियल सभा की पत्रिका भाग ६५, १९४५, पृ० ५५-५७)।

१—लेवी, प्रिज़ूलुस्की तथा जू-ब्लाक के लेखों का संकलन बागची महोदय ने अपनी पुस्तक 'पूर्व आर्य और पूर्व द्राविड़' में किया है। इसी नाम से लेवी का लेख फ्रांसीसी भाषा में पेरिस की एशियाटिक पत्रिका में छपा (देखिये जुलाई-सितम्बर १९२३ अंक, पृ० ५५-५७)।

२—हिन्दू-जावा इतिहास पृ० ३८ से। हारनेल ने अपने ग्रन्थ 'भारतीय नौका आकारों का उद्गम तथा महत्त्व' में लिखा है कि आदि द्राविड़ लोगों पर पेलिनेसियन प्रभाव पड़ा। इनके विचार से मलाया निवासी यहाँ आये और वे अपने साथ कोका लेते आये (देखिये बंगाल की एशियाटिक सभा की पत्रिका का विशेषांक ७, १९२०, पृ० १७)।

३—विंस्टेड ने हिन्दनेशिया और मों ख्मेर की भाषाओं में बहुत सी कहानियों की समानता दिखाने का प्रयास किया है। (देखिये स्ट्रेट प्रान्त की एशियाटिक सभा की पत्रिका नं० ७६ पृ० ११९)।

भारत की मुण्ड तथा खस जातियों में बहुत कुछ समानता पाई जाती है। इससे यह न समझना चाहिए कि उन देशों में केवल इन्हीं जातियों के पूर्वज भारत से गये। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत से बाहर जाने वालों में उच्च और सभ्य वर्ग के व्यक्ति थे जिनका स्थान उत्तरी भारत में था।

हिन्द-चीन के थाई—हिन्द-चीन के थाई निवासियों की भारत की कुछ अनार्य जातियों से भाषा के आधार पर समानता पाई जाती है, किन्तु आन्तरिक भाग में एक अन्य जाति के व्यक्ति रहते थे जिनको थाई के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इसी वर्ग के लोगों ने अपने देश स्याम का दूसरा नाम थाईलैण्ड रक्खा। किंवदंतियों के अनुसार इस देश का यह नाम किसी अन्य आधार पर पड़ा। उनका कहना है कि इस शब्द के अर्थ स्वतन्त्र हैं और यह शब्द उस समय से प्रयोग किया जाने लगा जब से उस देश को कम्बुज के अधिकार से स्वतन्त्र किया गया। थाई जाति के लोगों के विषय में बहुत प्राचीन काल से जानकारी है।[१] इनका सम्बन्ध मंगोलों से रहा है और यह चीनियों से मिलते-जुलते हैं। ईसा से कई शताब्दी पहिले से वर्तमान लैंगकिन् और यूनान (चीन का एक प्रान्त) में इनके उपनिवेश स्थापित हो चुके थे। इसके बाद इन्होंने दक्षिण और पश्चिम की ओर बढ़ना आरम्भ किया और अनेकों स्थानों पर अधिकार किया। यद्यपि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा

१—देखिये टंग पाओ १८९७ पृ० ५३, १९०९ पृष्ठ ४९५; बोस : स्याम का भारतीय उपनिवेश–लाहौर १९२७; मजुमदार : कम्बुज देश पृ० ५ से; प्रिजूलंस्की : फ्रांसीसी हिन्द-चीन की जातियाँ पेरिस १९३१ भाग १, पृ० ४७-६०।

सकता कि किस समय में यह अग्रसर हुए पर यह निश्चय है कि पश्चिम में यह उत्तरी इरावदी और दक्षिण में स्याम तथा कम्बुज तक पहुँच चुके थे।

हिन्दू उपनिवेशों का श्रीगणेश—भारतीय व्यापारियों का उल्लेख जातकों में मिलता है। इन बौद्ध ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि व्यापारियों के जत्थे दूर-दूर तक जाते थे। कर्पूरद्वीप और नरिकेल द्वीप से प्रतीत होता है कि इन स्थानों में कपूर और नारियल बहुत होता था। पूर्वीय देशों से मसाला, नारियल तथा कपूर के अतिरिक्त सोना भी प्राप्त होता था।[१] फ्रांसीसी पुरातत्त्व इतिहासज्ञ लेवी का कहना है कि द्वीपान्तर में कनकपुरी नामक नगरी ने हिन्द-चीन और हिन्देशिया के प्रति भारतीय व्यापारियों के हृदय में नवीन भावनाएँ जाग्रत कर दीं। यहाँ की बालू में सोना था और इसे पूर्वी एलडोराडो कहा जा सकता है। इधर भारतीय और चीन जातियों ने बड़े-बड़े जहाज बनाना आरम्भ किये जिसमें ६००-७०० तक व्यापारी एक साथ जा सकते थे।[२] व्यापारिक दृष्टिकोण के साथ-साथ धार्मिक प्रेरणावश भी भारतीय अब उपनिवेशों की ओर बढ़े जहाँ पर नये धर्मानुयायी बनाना सुगम था। कलिंग की

१—भारतीय इतिहास पत्रिका भाग ७, १९३१, पृ० १७३ तथा ३७१।

२—देखिये लेवी का लेख : 'रामायण का इतिहास'—प्रकाशित फ्रांस की एशियाटिक सभा की पत्रिका जनवरी-फरवरी १९१८, पृ० ८० से; तथा 'टालमी : निद्देस और बृहत्कथा'—सुदूरपूर्व के फ्रांसीसी स्कूल द्वारा एशियाटिक अध्ययन, भाग २, पृ० १-५५; कोड : 'हिन्द-चीन तथा हिन्दनेशिया के हिन्दू राष्ट्र' पृ० ३६ से; लेवी का लेख : 'कवेन लुवेन और द्वीपान्तर', प्रकाशित डच पत्रिका विजिद्र—८८, १९३१; पृ० ६२७।

लड़ाई में बहुत आदमी मारे गये थे और उसके बाद अशोक के समय में बौद्ध धर्म का बोलबाला था इसलिए कुछ लोगों का विचार है कि पहले कलिंग से ही लोगों ने देश से बाहर जाने का प्रयास किया।[१] इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उपनिवेशों में ब्राह्मणों की सत्ता और वर्ण-व्यवस्था का स्थापित होना सिद्ध करता है कि यहाँ से पहिले ब्राह्मण धर्मावलम्बी बाहर गये और उनके जाने का कारण कदाचित् उनकी सत्ता और धर्म-व्यवस्था पर श्रमण धर्मावलम्बियों का आक्रमण था।

इन भारतीयों ने अपने पुरुषार्थ के बल पर ब्रह्मा, मलय तथा हिन्द-चीन और हिन्दनेशिया में अनेक उपनिवेश स्थापित किये। उन्होंने व्यापार करना नहीं छोड़ा। ईसा से दूसरी शताब्दी पूर्व बैक्ट्रिया में स्थित प्रसिद्ध चीनी दूत चंग-कियन का कहना है कि वहाँ पर चीनी रेशम और बाँस का बना सामान हिन्द-चीन के यूनान और ज़ेह्-च्वान में उत्तरी भारत, और अफ़गानिस्तान होता हुआ आता था।[२] चीन और

१—डा० मजुमदार के मतानुसार शैलेन्द्र राजाओं का उद्गम स्थान कलिंग था और यहीं से वे मलय द्वीप गये (देखिये बृहत्तर भारत पत्रिका भाग १, पृ० ११-२७)। प्रो० नीलकण्ठ शास्त्री ने इसका खण्डन करते हुए लिखा है कि शैलेन्द्र दक्षिण के पाण्ड्य देश से बाहर गये। (देखिये मद्रास की प्राच्य सभा की पत्रिका भाग १०, अंक २, पृ० १९१-२००) कोड के मतानुसार कलिंग के घमासान युद्ध के फलस्वरूप भारतीयों का देश से बाहर जाना विशेषतया महत्त्व नहीं रखता है। (देखिये 'हिन्द-चीन तथा हिन्दनेशिया के हिन्दू राष्ट्र', पृ० ४१)।

२—मजुमदार : कम्बुज देश पृ० ११, स्याम देश के पोंग-टुक नामक स्थान में एक यूनानी रोमन मिश्रित कला का प्रदीप, जो कदाचित्

पश्चिमी एशिया के बीच यूनान, उत्तरी ब्रह्मा और भारत का मार्ग बहुत काल तक चालू रहा और ६६४ ई० में इसी मार्ग से चीन के सम्राट् ने तीन सौ प्रचारकों को धार्मिक ग्रन्थों की खोज के लिए भारत भेजा। इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन समय में स्थल मार्ग का उपयोग होता था। ब्रह्मा से लेकर यूनान (हिन्द-चीन) तक हिन्दू सभ्यता की पूर्ण छाप पड़ी। पिलियो नामक एक विद्वान का कहना है कि यहाँ के प्राचीन लेखों की लिपि हिन्दू सभ्यता की देन है।[१] उस देश के बहुत से भौगोलिक स्थानों का नामकरण भी भारतीय नगरों के आधार पर हुआ। यूनान के एक प्रान्त का नाम गन्धार था, और एक भाग विदेह राज्य कहलाता था जिसकी राजधानी मिथिला थी। यूनान में ९वीं-१०वीं शताब्दी तक बौद्ध धर्म भी अच्छी तरह फैल चुका था, पर इसका उल्लेख आगे किया जायेगा।

ईसा की पहिली अथवा दूसरी शताब्दी का है, दूसरी शताब्दी की एक छोटी मूर्ति, द्वारावती कला की बहुत सी मूर्तियाँ, जो ईसा की छठी शताब्दी की हैं, तथा अन्य वस्तुएँ मिलीं। (कोड : 'स्याम के नये पुरातत्विक खोज पदार्थ'—लन्दन की भारतीय कला तथा साहित्य की पत्रिका भाग २, पृ० ९-२० तक)। सेलिगमैन नामक एक विद्वान् ने प्राचीन रोम तथा सुदूरपूर्व के प्राचीन सम्पर्क पर प्रकाश डाला है (देखिये ऐन्टीक्वेरी भाग ११, पृ० ५-३१)।

१—डा० मजुमदार का कथन है कि हिन्द-चीन के संस्कृत लेखों की लिपि कुषाण लिपि से ली गई है। (देखिये सुदूरपूर्व के फ्रांसीसी स्कूल की पत्रिका भाग ३२ पृ० १२७-१३९)। प्रो० नीलकण्ठ शास्त्री का मत इससे भिन्न है। उनका कथन है कि लिपि पर दक्षिणी भारत की पल्लव लिपि की छाप है। (देखिये यही पत्रिका भाग ३५, पृ० २३३-२४१)।

उत्तरी ब्रह्मा में भारतीय स्थल मार्ग से आये और उनका देश-निवासियों पर इतना प्रभाव पड़ा कि थोड़े समय में हिन्दू मों राज्य स्थापित हो गये[१] जो क्रमशः धन्यावती, बसिम, रामावती, हंसावती और सुवर्ण भूमि के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनकी समानता वर्तमान अराकान, बसीम, रंगून, पेगू और ठटोन से की जा सकती है। कुछ और दक्षिण में द्वारावती से परे स्याम में और मलय द्वीप से आगे कम्बुज में ख्मेर हिन्दू राष्ट्र तथा चम्पा में चाम राज्य की स्थापना हुई। इससे यह प्रतीत होता है कि भारतीय औपनिवेशिक जल-मार्ग से भी बाहर गये। पेरीप्लिस, जिसकी तिथि ईसा की पहिली शताब्दी है, में लिखा है कि भारतीय बन्दरगाहों से बहुत से

१—ह्वेन्त्सांग ने समतट के आगे श्री क्षेत्र राज्य का उल्लेख किया है और उसके दक्षिण-पूर्व में कामलंक, जिसकी समानता पेगू (हंसावती) से की जाती है, द्वारावती (स्याम), ईशानपुर, महाचम्पा तथा दक्षिण-पश्चिम यमनद्वीप (यवद्वीप) नामक राज्यों का उल्लेख किया है (देखिये : बील 'पश्चिमी संसार के बौद्ध वृत्तान्त' भाग २. पृ० १९९-२००)। पी० भट्टाचार्य ने सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यह भारतवर्ष में पूर्वी बंगाल, आसाम, मनीपुर तथा उत्तरी बर्मा के प्रान्त थे। (देखिये भारतीय इतिहास पत्रिका भाग ४, पृ० १६९-१७८), किन्तु फ्रांसीसी लेखक फिनो के विचार ठीक प्रतीत होते हैं। उनके मतानुसार मो-हो-चन-पो अथवा महाचम्पा की अनाम से और ई-शं-न-पु-लो अथवा ईशानपुर की कम्बोडिया से समानता की जा सकती है। तो-लो-पो-ति अथवा द्वारावती (मीनाम) के दक्षिण का भाग है, और सिंह-लि-छ-त-प्रो अथवा श्री क्षेत्र दक्षिण इरावदी का भाग है, जिसकी राजधानी प्रोम थी। कदाचित् किंग्र-मो-ले-क मलाया प्रदीप में लिगोर के निकट था और येन-मो-न-चाऊ के विषय में जानकारी प्राप्त नहीं है। (देखिये भारतीय इतिहास पत्रिका भाग २, पृ० २६१)।

जहाज़ मलय देश को जाते थे, और टालमी ने तो हिन्द-चीन और मलय द्वीप के बहुत से भारतीय स्थानों का उल्लेख किया है। कुछ चीनी ग्रन्थों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ईसा की द्वितीय शताब्दी में दक्षिण सागर होते हुए भारतीय राजदूत चीन जाते थे। जहाज़ तट के निकट होकर जाते थे, इसलिए दक्षिण कम्बुज देश से नाविक अनभिज्ञ न थे। ईसा की तीसरी शताब्दी में भारत और कम्बुज के बीच सम्पर्क स्थापित हो गया था।

अध्याय २

कम्बुज—फ़ूनान का प्रारम्भिक इतिहास

यह कहना कठिन है कि किस कारणवश भारतीय औपनिवेशिक यहाँ आये, पर यह तो स्वाभाविक बात है कि सामुद्रिक यात्रा में उन्हें कम्बुज तट के निकट होकर जाना पड़ता था अतः उन्होंने इस देश पर अपना प्रभाव जमाया। भारतीय पुरुष व्यापार, धार्मिक स्फूर्ति और राजनैतिक सत्ता स्थापित करने के भाव से सुदूरपूर्व में धीरे-धीरे बढ़ रहे थे। ईसा की पहली शताब्दी के निकट उन्होंने कम्बुज देश पर अधिकार कर वहाँ अपनी राजनैतिक सत्ता स्थापित की। उस समय में कम्बोडिया में फ़ूनान और कम्बुज नामक दो राज्य थे। इन दोनों राज्यों में हिन्दुत्व स्थापन के सम्बन्ध में किंवदन्ती है।[१] फ़ूनान का राज्य पहिले बहुत उन्नति कर

१—फ़ूनान शब्द की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों की भिन्न धारणायें रही हैं। कालग्रेन का कथन है कि यह व्यू-नाम शब्दों को मिलाकर बना है, जो ख्मेर भाषा में ब्नाम हुआ और नोम रूप में प्रयोग होने लगा। (चीनी तथा चीनी-जापानी शब्दकोष का विश्लेषण नं० ४१ तथा ६५० कोड के 'हिन्द-चीनी तथा हिन्दनेशी हिन्दू राष्ट्र' नामक ग्रन्थ से उद्धृत, पृ० ६८)। फिनो महोदय का कहना है कि ख्मेर शब्द 'कुरूँग ब्नाम', जिसकी समानता संस्कृत शब्द 'पर्वतभूपाल' अथवा 'शैलराज' से की जा सकती है, के आधार पर चीनियों ने इस देश का नामसंस्करण किया (देखिये पेरिस की एशियाटिक सभा की पत्रिका-जनवरी-मार्च १९२७, पृ० १८६)। अमोनिये के अनुसार इस चीनी

रहा था पर बाद में यह कम्बुज़ के आधीन हो गया। यहाँ पहिले फ़ूनान में हिन्दू राज्य स्थापन पर विचार किया जायेगा।

फूनान में हिन्दू राज्य—केंग-टाई, जिसे चीनी मेगास्थनीज़ नाम से भी सम्बोधित किया जाता है, ने ईसा की तीसरी शताब्दी में यहाँ हिन्दू राज्य स्थापन विषय पर कुछ लिखा है।[१] फूनान को राज्य सीमा के अन्तर्गत कम्बुज, कोचीन-चीन और मेकांग नदी की दक्षिणी घाटी सम्मिलित थी। कम्बुज और फ़ूनान के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में कुछ विद्वानों की धारणा है कि कम्बुज फ़ूनान का ही नाम था, पर लेखों से यह स्पष्ट है कि यह दोनों भिन्न-भिन्न राज्य थे। कम्बुज पहिले फ़ूनान के आधीन था और बाद में परिस्थिति इसके बिलकुल विपरीत हुई। इस राज्य स्थापन का उल्लेख हमें चीनी वृतान्तों में मिलता है। उनसे यह ज्ञात होता है कि इस देश के निवासी असभ्य थे और वे नग्न रहते थे। इनकी राज्ञी का नाम ल्यू-ये था। ह्वे न-टियन नामक एक ब्राह्मण

शब्द के अर्थ 'सुरक्षित-दक्षिण' है, किन्तु पिलियो ने इसे देश का केवल चीनी नाम समझा है ('फूनान'—सुदूरपूर्व के फ्रांसीसी स्कूल की पत्रिका भाग ३ पृ० २४८-३०३) कोड ने बानोम नाम की दक्षिण कम्बुज की पहाड़ी के आधार पर इस देश का नाम संस्करण निर्धारित किया है जो कदाचित् ठीक प्रतीत होता है (देखिये यही पत्रिका भाग २८ पृ० १२७)।

१—ली-टाओ-युअन (जिसकी तिथि पाँचवीं शताब्दी के अन्त और छठी शताब्दी के आरम्भ में रक्खी गई है) ने अपनी पुस्तक 'चाऊए-किंग-चाऊ' में कैंगटाई के फूनान-श्वान, जिसे ईसा की तृतीय शताब्दी में फ़ूनान कहा गया है, का वृत्तान्त उद्धृत किया है। (देखिये पेरिस की एशियाटिक सभा की पत्रिका मई-जून १९१९, पृ० ४५८)।

ने इसे हराया और इससे विवाह कर यहाँ हिन्दू वंश की स्थापना की। यह कहना कठिन है कि वह सीधे बाहर से जल-मार्ग द्वारा आया था अथवा मलय देश के हिन्दू उपनिवेशों से होकर। कम्बुज लेखों[१] में ब्राह्मण को कौण्डिन्य और राज्ञी को सोमा नाम से सम्बोधित किया गया है। इन्हीं की संतानों ने आगे चलकर राज्य किया। हिन्दू राज्य स्थापन की इस कथा का कई और स्थानों में भी उल्लेख मिलता है। चम्पा के एक ६५७ ई० के लेख[२] में कम्बुज की राजधानी भवपुर

१—देखिये भववर्मन् का ब्यान मन्दिर का लेख **श्री कौण्डिन्यस्य महिषी या दक्षा सोमवंश्यप्रसूतानां—लोपमकुर्वता** :—मजुमदार 'कम्बुज लेख' नं० २६, पृ० ३४, कोड : 'कम्बुज लेख' भाग १२५१)। जयवर्मन् पञ्चम का प्राह आइनकोसी का लेख —**सोमाकौण्डिन्यवंशे**-मजुमदार-कम्बुज लेख नं० १११ पृ० २८४; कोड : कम्बुज लेख भाग १, ७७ इत्यादि। दक्षिण भारत में कौण्डिन्य वंशजों ने उत्कर्ष तथा वैभव प्राप्त किया (देखिये : चटर्जी : 'कम्बुज अध्ययन में आधुनिक प्रगति'; वृहत्तर भारतीय सभा की पत्रिका भाग ६, पृ० १३६)।

२—देखिये फिनो : मि-सो का लेख (नं० ३), सुदूरपूर्व के फ्रांसीसी स्कूल की पत्रिका; भाग ४, पृ० ६२३ : कोड। बकसेई चमक्रोंन का लेख : पैरिस की एशियाटिक सभा की पत्रिका मई-जून १६०६, पृ० ४७६-४७८) मजुमदार : 'चम्पा' पृ०। इस किंवदन्ती का उल्लेख अन्य स्थानों में भी मिलता है। इसका विवरण चीनी दूत चाउ-ता-कुअन (१३वीं शताब्दी) ने भी किया है। (देखिये पिलियो : 'कम्बुज देश के संस्कार' सुदूरपूर्व के फ्रांसीसी स्कूल की पत्रिका भाग २, पृ० १५५ तथा फिनो—हिन्द-चीनी किंवदन्तियाँ—पृ० २०५) दक्षिण भारत में भी काञ्ची के पल्लव राजाओं के विषय में इस प्रकार की किंवदन्ती प्रचलित है—देखिये—गोलोव्यू : 'नागी तथा अप्सराओं की कथायें'—सुदूरपूर्व पत्रिका भाग २४, पृ० ५०१-१०।

की स्थापना के सम्बन्ध में लिखा है कि ब्राह्मणों में श्रेष्ठ कौण्डिन्य ने यहाँ अश्वत्थामा से प्राप्त भाले को गाड़कर अपना राज्य स्थापित किया था। इसने किन्नरों की पुत्री सोमा से विवाह किया और इसके वंश में भववर्मन् नामक राजा हुआ। कम्बुज ग्रन्थों में भी इस घटना का उल्लेख है। एक ग्रन्थ के अनुसार कौण्डिन्य इन्द्रप्रस्थ के राजा आदित्यवेश का पुत्र था जिसे देश से बहिष्कृत कर दिया था। चीनी ग्रंथों के अनुसार इस राज्य की राजधानी समुद्र से ५०० ली—अथवा कोई ८४ मील की दूरी पर थी। प्राचीन राजधानी की समानता कुछ विद्वानों ने वर्तमान छौडोक और नाम-पेन्ह से की है, पर पिलियो[१] ने व्याधपुर को राजधानी माना है जिसकी समानता अंगकोर वौराई से की गई है। कोड ने व्याधपुर को राजधानी तो माना है पर वह इस स्थान वानोम को पहाड़ी के नीचे रखता है।[२]

कौण्डिन्य के वंशज—कौण्डिन्य के राज्य की स्थापना कदाचित् ईसा की पहली शताब्दी में हुई। इस व्यक्ति के विषय में और कुछ जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है[३] पर

१—पिलियो : 'फूनान'—पृ० २६३।

२—सुदूरपूर्व पत्रिका भाग २८, पृ० १२७।

३—पिलियो : 'फूनान'—पृ० २६५। स्टाइन का कथन है कि चीनी लोग '**फन**' शब्द का प्रयोग केवल महान् सम्राट् के नाम के आगे करते थे। मास्पेरों के अनुसार इस शब्द की समानता चम्पा के सम्राटों के नाम के आगे **वर्मन्** प्रत्यय से की जा सकती है ('चम्पा का राज्य' पृ० ५३ नोट ७)। कोड इस मत से सहमत नहीं है ('हिन्दू राष्ट्र'—पृ० १८, नोट १)।

उसके पुत्र ने सात नगरों की स्थापना की। यहाँ आगे चलकर छोटे-छोटे राज्य स्थापित हुए जो आपस में लड़कर इस देश के लिए घातक सिद्ध हुए। चीनी ग्रन्थों के अनुसार इस देश में ह्वेन-पेन-हुआंग नामक एक महान् राजा हुआ जो कोई ९० वर्ष तक जीवित रहा। उसने इन छोटे-छोटे राज्यों में फूट डालकर उन्हें एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया और अपने पुत्रों तथा पौत्रों को वहाँ नियुक्त किया। इसके पश्चात् जनता ने फन-ये-मान को राजा निर्वाचित किया। यह लगभग ईसा की २०० वर्ष की घटना है। इसने फ़ूनान राज्य के विस्तार का प्रयास किया। इस राजा की सुवर्ण भूमि पर आक्रमण करते समय मृत्यु हो गई। इसकी बड़ी बहिन के लड़के फन-चान ने इसके पुत्र फन-किन-चैंग का वध कर इसके राज्य पर अधिकार कर लिया और लगभग २२५ ई० में गद्दी पर बैठा।

भारत से औपचारिक सम्पर्क—फन-चान ने लगभग २० वर्ष तक राज्य किया और पिलियो के मतानुसार इसी समय से भारत के साथ व्यावहारिक सम्बन्ध स्थापित हुआ। पाँचवीं शताब्दी के एक ग्रन्थ में लिखा है कि टान्यांग (पश्चिमी भारत का भाग) का निवासी किय-सि-ली व्यापारिक ध्येय से फूनान पहुँचा। उसने वहाँ के राजा को अपने देश को पूर्ण वृत्तान्त बताया और यह भी कहा कि उसका देश लगभग ५,००० मील की दूरी पर है और वहाँ से आने-जाने में कोई ३-४ वर्ष लगते हैं। सम्राट् ने अपने सम्बन्धी सू-वू को प्रतिनिधि के रूप में भारत भेजा। यह तकोला नामक बन्दरगाह में जहाज़ पर बैठा और कोई एक वर्ष बाद गंगा के मुहाने पर

पहुँचा ।[१] नदी के मार्ग से लगभग १,१०० मील चलने पर वह भारत के राजा के यहाँ आया जहाँ उसका स्वागत हुआ । भारत से विदाई में उसे चार घोड़े मिले और जब वह फ़ूनान लौटकर पहुँचा तो चार वर्ष बीत चुके थे और वहाँ की राज्य-परिस्थिति बदल चुकी थी । गत सम्राट् फन-ये-भान के छोटे लड़के फन-चाँग ने अपने भाई के वध का बदला फन-चान से लिया । पर वह भी अधिक दिन तक राज्य न कर सका । सेनापति फन-स्बिन ने उसका वध कर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया । यह लगभग २४५-२५० ईसवी की बात है ।

चीन से सम्बन्ध—फन-स्बिन के समय में दो चीनी दूत कैंग-टाई और चू-चिंग फ़ूनान आये । यहाँ उनकी चेनसाँग से भेंट हुई जिसे भारत के सम्राट् ने भेजा था । इन दोनों चीनी दूतों ने फ़ूनान का हाल लिखा है । कैंग-टाई का ग्रन्थ तो बहुत प्रसिद्ध हुआ और इतिहासकार इस विद्वान् की तुलना मेगास्थ-नीज़ से करते हैं । इसका लिखा ग्रन्थ भी खो गया है पर उसके अंश बाद में लिखित ग्रन्थों में उद्धृत हैं । इसके वृत्तान्त में भारतवर्ष का भी उल्लेख है जो कदाचित् इसने चेन साँग से सुनकर लिखा हो । इसका कहना है कि वहाँ का

१—देखिये गैबरियल फेरांड : 'क्वेन-लुएन और प्राचीन अंतःसागर सम्पर्क'—फ्रांस की एशियाटिक सभा की पत्रिका १९१९, पृ० ४३१ । तकोला नामक बन्दरगाह के विषय में लेवी का विचार है कि इसकी समानता टालमी के तकोला से की जा सकती है । भारत सम्राट् की समानता इस फ्रांसीसी विद्वान् ने मुरूण्ड सम्राट् से की है । फेरांड के अनुसार यह घोड़े यूची देश के थे (देखिये पृ० ४५८) ।

राजा म्यू-लुन कहलाता था और उस देश में कोई ६ राज्य थे किया-वै (कपिलवस्तु), चे-बै (श्रावस्ती) इत्यादि। लेवी का कहना है कि म्यू-लुन की समानता मुरूण्ड नृप से की जा सकती है जिस वंश का उल्लेख पुराणों तथा इलाहाबाद के समुद्रगुप्त के लेख में है। इस विद्वान के मतानुसार इस वंश का कुषाणों से सम्बन्ध था।[१]

फन-स्विन के लम्बे शासन-काल में कई राजदूत चीन भेजे गये जो क्रमशः २६८ से २८७ ईसवी में गये और जिनका टिसिन के इतिहास में उल्लेख है। इसके समय में फ़ूनान ने सांस्कृतिक क्षेत्र में भी उन्नति की और कैंग-टाई ने लिखा है कि इसने पुरुषों की नग्न घूमने की प्रथा को बन्द किया। इसके पश्चात् का वृत्तान्त अलभ्य है। हाँ, चीनी इतिहास से पता चलता है कि ३५७ ईसवी में चन्टन अथवा चन्दन की ओर से एक दूत कुछ पालतू हाथी लेकर चीन भेजा गया था। वह हाथी लौटा दिये गये क्योंकि इनसे सम्राट् को भय था। इसके बाद ४३४ ईसवी तक कोई दूत चीन नहीं भेजा गया।

कौण्डिन्य द्वितीय—लेवी के विचार में समुद्रगुप्त की उत्तर भारत विजय के कारण वहाँ के लोगों में सुदूरपूर्व जाने की उत्तेजना बढ़ने लगी, और उनकी धारणा है कि ३५७ ईसवी में फ़ूनान का राजा चन्टन भारतीय कुषाण वंशज

१—'कनिष्क तथा शातवाहन'—फ्रांस की एशियाटिक पत्रिका, जनवरी-मार्च १९३६, पृ० ६१ से। समुद्रगुप्त के इलाहाबाद के लेख में मुरूण्ड शीर्षक 'देवपुत्रशाहि षाहुनषाहि' से सम्बन्ध रखता है और लेवी ने इसी आधार पर कुषाण वंशजों को समुद्रगुप्त का समकालीन माना है।

था।[१] उनके विचार से ईसा की मध्य चौथी शताब्दी से मध्य पाँचवीं शताब्दी के बीच में भारत से बहुत से जत्थे, जिनमें राजकुमार, ब्राह्मण, विद्वान् और वीर सम्मिलित थे, सुदूरपूर्व तथा मलय की ओर गये जहाँ पर पहिले से हिन्दुओं ने राज्य स्थापित कर लिया था। इसी समय में फूनान में नवीन हिन्दू जाग्रति हुई। लिअंग के इतिहास से पता चलता है कि ईसा की चौथी शताब्दी के अन्त और पाँचवीं शताब्दी के आरम्भ में जो किआओ–चेन–जू (कौण्डिन्य) नामक फूनान में शासक हुआ वह एक भारतीय ब्राह्मण था और दिव्य वाणी सुनकर वह फूनान आया। यहाँ पहुँचने पर उसका स्वागत किया गया और वह राजा चुन लिया गया। उसने यहाँ के सब नियमों को बदल कर भारतीय शासन नियमों को चलाया।

इन्द्रवर्मन्–जयवर्मन्––कौण्डिन्य का उत्तराधिकारी चे–लि–टो–प–मौ–(श्री इन्द्रवर्मन् अथवा श्रेष्टवर्मन् था जिसने

१—लेवी के मतानुसार यह शब्द 'चीन स्थान' है जिसकी समानता 'देवपुत्र' से होनी चाहिये। 'देवपुत्र' उपाधि कुषाण सम्राटों से सम्बन्ध रखती है। अतः लेवी का विचार है कि यह दूत कनिष्क के वंशज ने भेजा था (मेलांगेस पृ० १७६ से) पिलियो इस मत से सहमत नहीं है (फूनान—पृ० २५२, नोट ४)। कनिष्क को चैनटियन अथवा चन्दन नाम से मध्य एशिया के ग्रन्थ में सम्बोधित किया गया है और डा० मजुमदार ने तो इसी आधार पर मेहरौली के चन्द्र की समानता कनिष्क से की (बंगाल की एशियाटिक सभा की पत्रिका १९४३)। यह कहना कठिन है कि चन्दन शब्द से सम्पूर्ण कुषाण वंशजों का संकेत होता है। कोड के मतानुसार पश्चिमी कोचीन-चीन में फूनान और ईरानी संसार से सम्पर्क का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रतीत होता है। यह प्रभाव कला-क्षेत्र में भी दिखाई पड़ता है (देखिये 'हिन्दू राष्ट्र', पृ० ८३)।

सुंग वंश के वेन सम्राट् वेन के पास ४३४ तथा ४३५-४३८ ई० में कई राजदूत भेजे। उसी चीनी ऐतिहासिक पुस्तक में चो-ये-पा-भो (जयवर्मन्) का भी उल्लेख है जो कौण्डिन्य वंशज था। पिलियो का कथन है कि उसने कुछ व्यापारियों को कैन्टन भेजा था। लौटते समय उनके साथ नागसेन नामक एक भारतीय भिक्षु हो लिया। एक बड़े तूफान ने उनके जहाज़ को चम्पा पहुँचा दिया जहाँ उनका सब सामान लूट लिया गया। नागसेन भागकर किसी प्रकार से फ़ूनान पहुँचा। इसी नागसेन को ४८४ ई० में जयवर्मन् ने चीनी सम्राट् के पास भेजा। उसने सम्राट् से चम्पा के राजा के विरुद्ध सैनिक सहायता माँगी। नागसेन ने चीनी सम्राट् के सम्मुख फूनान का वर्णन किया और यह भी कहा कि वहाँ महेश्वर का सम्प्रदाय बढ़ रहा था। महेश्वर के अतिरिक्त उसने बुद्ध और अपने सम्राट् का भी गुण गान किया। इससे यह प्रतीत होता है कि उस समय तक बौद्ध धर्म फूनान में प्रचलित हो गया था। इस सम्राट् के समय में चीन के साथ फूनान का घनिष्ठ सम्बन्ध बना रहा। ५०३, ५११ और ५१४ ईसवी में उसने कई और दूत चीन भेजे। सीप की बनी एक बुद्ध जी की मूर्ति भी भेजी गई। इस सम्पर्क का प्रभाव राजनैतिक क्षेत्र में तो कम हुआ पर धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से फूनान और चीन का सम्बन्ध दृढ़ होता गया। फूनान के दो बौद्ध भिक्षु संघपाल और मन्द्रसेन चीन में रह गये[1] जहाँ उन्होंने धार्मिक बौद्ध ग्रंथों

१—पिलियो के लेख (फूनान—पृ० २८४-८५) में फूनान के दो बौद्ध भिक्षुओं का विवरण है। इनमें से एक संघपाल अथवा संघवर्मन् था जो कई भाषाओं का ज्ञाता था, और कोई १६ वर्ष तक चीन में

का अनुवाद किया। ५१४ ईसवी में जयवर्मन् की मृत्यु हो गई।

रुद्रवर्मन्–गुणवर्मन्––इसके बाद इसका वेश्या-पुत्र रुद्रवर्मन्, राज्याधिकारी को मारकर गद्दी पर बैठा। दक्षिण कम्बुज में त्रेअंग प्रान्त में मिले लेख में जयवर्मन् की राज्ञी कुलप्रभावती का उल्लेख है। कोड ने इस लेख की[1] लिपि की समानता गुणवर्मन् के लेख से दिखाकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि गुणवर्मन् जयवर्मन् और कुलप्रभावती का पुत्र था। रुद्रवर्मन् के समय में ६ दूत क्रमशः ५१७, ५१६, ५२०, ५३०, ५३५ तथा ५३६ में चीन भेजे गये। इसके पश्चात् कोई तीन-चौथाई शताब्दी तक फ़ूनान का कोई राजनैतिक वृत्तान्त नहीं मिलता है। एक चीनी ग्रन्थ में लिखा है कि चेन-ला के राजा चित्रसेन ने कम्बुज को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया। चम्पा का फ़ूनान पर

रहा और उसने कई ग्रन्थों का अनुवाद किया। दूसरा मन्द्र अथवा मन्द्रसेन था। इसने संघपाल के साथ कई ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। (देखिये : नन्जीओं सूचीपत्र नं० १०१-१०२)। इन दोनों की तिथि ५०० ईसवी निर्धारित की जाती है।

१—इस त्रेअंग प्रान्त में अंकोर काल के पहिले के बहुत से भग्नावशेष मिले हैं। इस लेख में जयवर्मन् की मुख्य राज्ञी कुलप्रभावती द्वारा आराम, तड़ाक तथा आलय के स्थापन का उल्लेख है। इस लेख की लिपि की समानता गुणवर्मन् के लेख से की जा सकती है जो कोचीन-चीन के थाप मुश्रोन में मिला है और रुद्रवर्मन् के वाटि के लेख से पहिले का प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त वैष्णव लेख होने के कारण, रुद्रवर्मन् के बौद्ध लेख से इसकी भिन्नता प्रतीत होती है। (देखिये : सुदूर-पूर्व पत्रिका, भाग ३१, पृ० १ से; बृहत्तर भारत पत्रिका : भाग ४, पृ० ११७ से)।

पूर्णतया अधिकार न हो सका। एक अन्य चीनी ग्रन्थ के आधार पर पिलियो[1] ने लिखा है कि फ़ूनान के राजा ने अपनी राजधानी दक्षिण में न–फु–न में बनाई जिसकी समानता उन्होंने नवनगर से की है जो वर्तमान कम्पोट के निकट रहा होगा।

सातवीं शताब्दी तक फ़ूनान से दो राजदूत चीन गये। ईत–सिंग[2] का कहना है कि चम्पा से चलकर पश्चिम में प–नान नामक स्थान पड़ता है जो पहिले फ़ूनान कहलाता था। यहाँ पर पहिले नग्न रहने की प्रथा थी। वहाँ बहुत से देवताओं की उपासना होती थी और बौद्ध धर्म उन्नति कर रहा था पर एक कुटिल राजा ने बौद्ध धर्म को बड़ी क्षति पहुँचाई और उस समय वहाँ पर बौद्ध भिक्षु न थे। फ़ूनान की स्वतन्त्रता का हरण चेन–ला, जिसकी समानता कम्बुज से की जाती है, के राजा चित्रसेन ने किया पर इस देश का अस्तित्व नहीं मिट सका। कम्बुज जो पहिले फ़ूनान के आधीन था अब केवल स्वतन्त्र ही नहीं हुआ वरन् उसने इस देश को अपने अधिकार में कर लिया जो ७०० वर्ष तक रहा।

फूनान में हिन्दुत्व की छाप—यह पहिले ही कहा जा

१—'फूनान' पृ० २९५; कोड का कथन है कि चित्रसेन के आक्रमण से फूनान का उत्तरी भाग हाथ से निकल गया था और कदाचित् राजधानी पर भी आक्रमण हुआ था पर इस पर अधिकार न हो सका। शत्रु से रक्षा के लिए फूनान के सम्राट् ने दक्षिण में स्थित न-फू-न को अपनी राजधानी बनाया। (सुदूरपूर्व पत्रिका भाग २८, पृ० १३०)।

२—तककुसु—ईत-सिंग। पृ० १०।

चुका है कि ईसा की पहिली शताब्दी में यहाँ की राज्ञी सोमा थी और कौण्डिन्य ने इसको वस्त्र पहिनना सिखाया। उसने यहाँ भारतीय नियमों को पालन करने का आदेश दिया। इस देश में भारतीय हिन्दुत्व की छाप दो बार लगी। दूसरे कौण्डिन्य का समय ईसा की चौथी शताब्दी है और वह सीधे भारत से फ़ूनान आया था। भारत और फ़ूनान का व्यापारिक सम्बन्ध तो पहिले से स्थापित हो चुका था, औपचारिक रूप से राजदूत भी एक स्थान से दूसरे स्थान भेजे जाने लगे। चीनी ग्रन्थों के अनुसार हन काल में (हुअन के समय में १४७–१६७ ई०) भारत से राजदूत दक्षिणी सागर होकर आये और वे फ़ूनान अवश्य गये होंगे। यह कहा जा चुका है कि जयवर्मन् के समय में महेश्वर अथवा शिव और बुद्ध के उपासक फ़ूनान में थे। इसकी पुष्टि हम तीन और लेखों से भी कर सकते हैं जो कम्बुज में पाये गये हैं। ये सबसे प्राचीन हैं और दक्षिणी भारतीय लिपि में लिखे हैं। पहिले लेख[१] में विष्णु की स्तुति की गई है। दूसरा लेख[२] कौण्डिन्य वंशज गुणवर्मन् के आदेशानुसार खुदवाया गया था और इसमें विष्णु को चक्रतीर्थ स्वामिन् नाम से सम्बोधित किया गया है। इस देवता की मूर्ति स्थापना में वेद, उपवेद वेदांग और श्रुति में पारंगत ब्राह्मणों ने भाग लिया था। तीसरे लेख[३] में बुद्ध, धर्म और संघ तथा बौद्ध विहार का उल्लेख

१—वृहत्तर भारत पत्रिका, भाग ४, पृ० ११७।

२—सुदूर-पूर्व पत्रिका, भाग ३१, पृ० १ ।

३—यही पृ० ८। इन लेखों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि इनके लिखने वाले संस्कृत भाषा, साहित्य तथा पौराणिक गाथाओं से पूर्णतया परिचित थे। भारतीय धार्मिक तथा दार्शनिक बीज जो कौण्डिन्य ब्राह्मणों

है। तीसरे लेख में जयवर्मन् और उसके पुत्र रुद्रवर्मन् का उल्लेख है। उन्हें क्षत्रिय कहा गया है। जयवर्मन् का कोषाध्यक्ष एक ब्राह्मण था जिसने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था। इन तीन लेखों के आधार पर हम यह अच्छी तरह कह सकते हैं कि सातवीं शताब्दी तक फूनान में विष्णु, शिव तथा बौद्ध धर्म अच्छी तरह फैल चुका था और वर्ण-व्यवस्था भी स्थापित हो चुकी थी। इस विषय में गवेषणात्मक रूप से हम आगे चल कर विचार करेंगे।

द्वारा हिन्द-चीन की भूमि में बोया गया था अब वृक्ष का रूप धारण कर चुका था। लेखों से प्रतीत होता है कि वहाँ की भारतीय संस्कृति और सभ्यता परिपक्व अवस्था में थी। बौद्ध धर्म में महायान सम्प्रदाय का प्रभाव अभी नहीं पड़ा था। कला क्षेत्र में गुप्तकालीन मूर्ति कला तथा वास्तु कला का भी प्राचीन ख्मेरकालीन मूर्तियों तथा मन्दिरों पर प्रभाव पड़ा, जैसा कि फ्रांसीसी विद्वान् पामांटिये (सुदूरपूर्व पत्रिका भाग ३२, पृ० १८३); गोसालिये (एशियाटिक अध्ययन, भाग १, पृ० २९७-३१४); डूपो (सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ४१, पृ० २३३-२५४) इत्यादि ने सिद्ध करने का प्रयास किया है (देखिये 'बंगाल का इतिहास', प्रथम भाग, पृ० ४९३ तथा मजुमदार : 'सुवर्णद्वीप' भाग २, पृ० ३४७); ग्रूसे : 'सुदूर-पूर्व का इतिहास' भाग २, पृ० ५७८)।

अध्याय ३

कम्बुज राज्य का उत्थान

कम्बुज राज्य का उत्थान ईसा की छठी शताब्दी से आरम्भ होता है और इस राज्य ने लगभग ७०० वर्ष तक अपना स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित रक्खा। पहिले यह अन्य राज्यों की भाँति फ़ूनान के आधीन था पर वहाँ के अन्तिम सम्राट् रुद्रवर्मन् के पश्चात् कम्बुज के राजाओं ने धीरे-धीरे फ़ूनान पर अपना अधिकार जमा लिया। इस वंश के विषय में हमें पूरी जानकारी लेखों तथा चीनी ग्रन्थों से प्राप्त होती है। लेखों में शक संवत् ८६९-९४७ ईसवी के वकसेई चमक्रोन[१], संवत् ११०८-ईसवी ११८६ का ता-प्रोह्म[२], और लाओस के वसक के निकट वट-फु[३] का एक लेख प्रमुख है। पहिले लेख

१—पेरिस की एशियाटिक सभा की पत्रिका १९०९ मई-जून, पृ० ४९६-९७। मजुमदार कम्बुज लेख नं० ९२ पृ० १८५। यह एक मन्दिर का नाम है जो वकैंग पहाड़ी पर स्थित है, और यह अंगकोर थाम से थोड़ी दक्षिण की ओर है।

२—सुदूर पूर्व पत्रिका, भाग ६, पृ० ४४; मजुमदार : कम्बुज लेख नं० १७७, पृ० ४५९; अंगकोर थाम से पूर्व की ओर यह एक प्रसिद्ध मन्दिर है।

३—देखिये : सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग १५ (२) पृ० १०७। मजुमदार 'कम्बुज' लेख नं० १७१-१७६। वसाक के निकट वट-फु नामक एक प्रसिद्ध मन्दिर है जो मेंकांग नदी के किनारे है। (देखिये : अमोनिये : कम्बुज लेख, भाग २, पृ० १६२; कोड : सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २९, पृ०३०३-४)।

में कम्बुज ऋषि का उल्लेख है जिन्होंने कम्बुज की नींव डाली थी। इन्होंने मीरा नामक एक गन्धर्व कन्या से विवाह कर इस वंश की उत्पत्ति की।[1] इसमें श्रुतवर्मन् नामक एक राजा हुआ जिसके पुत्र श्रेष्ठवर्मन् ने अपने नाम से एक नगर बसाया जो कि बहुत काल तक बसाक प्रान्त में सुशोभित रहा। सुई वंश के इतिहास में चेन-ला वंश की राजधानी का उल्लेख है जो कि लैंग-किग्र-पो-पो नामक पहाड़ी के निकट थी।[2] यहाँ एक मन्दिर था जिसमें पुरुषमेध नामक यज्ञ होता था। इस चीनी नाम की समानता लिंग पर्वत से की जा सकती है जहाँ के देवता महेश्वर का उल्लेख तीसरे लेख वटफु में मिलता है। इस लेख में श्रेष्ठपुर विषय का भी उल्लेख है जहां लिगैंपुर आश्रम था। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रथम दो कम्बुज नृप श्रुतवर्मन् और श्रेष्ठवर्मन् ने वर्तमान वटफु के निकट अपना राज्य स्थापित किया। इसके अतिरिक्त हमको इन दोनों राजाओं के विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

भववर्मन् और उसके वंशज—श्रुतवर्मन् और श्रेष्ठवर्मन् ने तो कम्बुज की स्वतन्त्रता घोषित की थी पर भववर्मन् नामक

१—कम्बु स्वायम्भुव तथा मीरा के सम्पर्क की कथा, कांक्षी के पल्लव राजाओं की उत्पत्ति से सम्बन्धित प्रतीत होती है। कदाचित् यह दोनों एक ही स्रोत से ली गई थीं पर कथानक में बहुत भिन्नता है (देखिये, गोलोव्यू : 'नागी तथा अप्सराओं की कथायें'—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २४, पृ० ५०८)।

२—देखिये मा-त्वां-लिन् का वृत्तान्त जिसका अनुवाद सेन्ट डेनिस के ह्वे रवे ने किया है, पृ० ४८३ (कोड के हिन्दू राज्य से उद्धृत, पृ० ११४)। श्रेष्ठपुर के विषय में देखिये सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २८, पृ० १२४। वट-फु के लेख में श्रेष्ठपुर विषय का उल्लेख है।

नृप ने फ़नान को अपने अधिकार में करने का प्रयास किया जिसके अधिकार में पहिले कम्बुज था। ता-प्रोह्म के लेख में भववर्मन् नामक एक नृप का उल्लेख है जिसने एक नया वंश चलाया। एक और लेख से ज्ञात होता है कि इसने स्वभुज-बल से राज्य प्राप्त किया। यह ठीक है, क्योंकि उसके पिता वीरवर्मन् का दो अन्य लेखों में उल्लेख है।[१] इनमें से एक लेख में चित्रसेन द्वारा एक लिंग स्थापना का विवरण है। यह नृप सार्वभौम का पौत्र, वीरवर्मन् का कनिष्ठ पुत्र तथा भववर्मन् का कनिष्ठ भ्राता था और सिंहासनारूढ़ होने पर इसने अपना नाम महेन्द्रवर्मन् रक्खा। सार्वभौम नाम से तो कोई बड़े सम्राट् का संकेत होता है पर वास्तव में न तो इस सम्राट् और न उसके पुत्र वीरवर्मन् के शासन का कहीं उल्लेख है। भववर्मन् के समय से ही इस वंश ने ख्याति प्राप्त की। इस सम्बन्ध में अंग-चुम्बिक[२] लेख से हमें बहुत कुछ जानकारी प्राप्त होती है। इस लेख में ब्रह्मदत्त और ब्रह्मसिंह नामक रुद्रवर्मन् के दो राज्याभिषेकों का उल्लेख है। इनके भाँजे धर्मदेव और सिंहदेव क्रमशः भववर्मन् और महेन्द्रवर्मन् के राजवैद्य थे। इस धर्मदेव का पुत्र सिंहवीर ईशानवर्मन् का मन्त्री था और उसका पुत्र सिंहदत्त जयवर्मन् का राजवैद्य तथा आढ्यपुर का राज्यपाल था। इस लेख से यह प्रतीत होता है कि रुद्रवर्मन् के पश्चात् क्रमशः भववर्मन्, महेन्द्रवर्मन् (चित्रसेन), ईशानवर्मन्

१—भववर्मन् का वील कन्तेल का लेख (मजुमदार : कम्बुज लेख, नं० १३, पृ० १८) तथा सुदूरपूर्व पत्रिका : भाग २२, पृ० ५७-५८; तथा महेन्द्र वर्मन् का फू-लोखोन का लेख (यही पुस्तक नं १५, पृ० २०)।

२—मजुमदार : कम्बुज लेख, नं० २८, पृ० ३१।

तथा जयवर्मन् ने राज्य किया। रुद्रवर्मन् का उल्लेख पहिले ही हो चुका है और यह फ़नान का अन्तिम राजा था जिसने ५३९ में एक राजदूत चीन भेजा था। इसका और भववर्मन् का कोई सम्बन्ध न था[1] क्योंकि भववर्मन् के पिता और पितामह का पहिले ही उल्लेख हो चुका है।

हमें 'टांग वंश का नवीन इतिहास' और 'सुई का इतिहास' नामक चीनी ग्रन्थों से पता चलता है कि रुद्रवर्मन् के बाद फ़नान में च-ली (क्षत्रिय) वंश का राज्य स्थापित हुआ और इसमें चे-टो-सोन (चित्रसेन) नामक शासक ने फ़नान पर पूर्ण रूप से अधिकार कर लिया।[2] इसके बाद इसका पुत्र

१—कोड का कथन है कि भववर्मन् फ़ूनान का राजवंशज था और चेन-ला देश की कुमारी से विवाह करके वहाँ का सम्राट् हो गया था। इस प्रकार उसने सूर्य और चन्द्र वंश को, जो क्रमशः कम्बुज और फ़ूनान थे, को एक में मिलाया। इसी कारणवश श्रुतवर्मन् और उसके वंशजों के पश्चात् कौण्डिन्य तथा नागी सोमा वंशी सम्राट् हुए। कोड ने इस परिस्थिति पर भी प्रकाश डाला है जिसके अन्तर्गत चेन-ला के सम्राटों ने फ़ूनान पर अधिकार प्राप्त कर लिया। यह सत्य प्रतीत होता है कि रुद्रवर्मन् के पश्चात् उत्तराधिकारी के लिए संघर्ष हुआ हो और अन्त में भववर्मन् विजयी हुआ। छठी शताब्दी के दूसरे भाग में भववर्मन् और उसके भाई चित्रसेन ने फ़ूनान पर अधिकार कर लिया और व्याधपुर (वानोम) को अपनी राजधानी बनाया। ('हिन्दू राष्ट्र' पृ० ११६-११७)

२—पिलियो—'फ़ूनान' पृ० २७२। फिनो ने राज्य-विस्तार की सीमा निर्धारित करते लिखा है कि भववर्मन् और उसके भाई चित्रसेन की विजय-पताका मेकांग नदी पर स्थित क्रेटे, मुन, और देग्रेक के बीच बुरिश्रम, तथा बड़ी झील के पश्चिम में मोंकोलबोरे तक फहराई ('हिन्द-चीन सम्बन्धी किंवदन्तियाँ' पृ० ११८)। सुईवंश के इतिहास का अनुवाद बहुत पहिले किया गया—१८२६ भाग १—पृ० ७७ से (पेरिस)।

ईशानसेन हुआ जिसने अपने नाम से एक नगर बसाया और ६१६–१७ ई० में यहाँ से एक दूत चीन गया। एक और चीनी ग्रन्थ से पता चलता है कि चेंग-कुआन काल (ई० ६२७–६३९) में क्षत्रिय नृप ईशान ने फ़ूनान पर पूर्ण रूप से अधिकार कर लिया।[१] उपर्युक्त लेखों और चीनी वृत्तान्तों के आधार पर हम फूनान पर कम्बुज अधिकार को मान सकते हैं। यह प्रतीत होता है कि छठी शताब्दी में भववर्मन् नामक एक कम्बुज राजा ने अपने राज्य को बढ़ाना आरम्भ किया। उसके भाई चित्रसेन अथवा महेन्द्रवर्मन् ने फ़ूनान पर अधिकार कर लिया। वहाँ का राजा रुद्रवर्मन् अथवा उसका कोई वंशज वहाँ से भाग कर दक्षिण की ओर गया जहाँ यह वंश थोड़े समय तक राज्य करता रहा। फ़ूनान और कम्बुज की लड़ाई ईशानवर्मन् के समय तक रही और लगभग ६३० ईसवी में फ़ूनान कम्बुज राज्य का अंग हो गया।

महेन्द्रवर्मन्—चन-नखोन (बसाक प्रान्त) में मिले चित्रसेन के लेख से पता चलता है कि चित्रसेन सार्वभौम का पौत्र, वीरवर्मन् का पुत्र तथा भववर्मन् का कनिष्ठ भ्राता था[२] और सिंहासनारूढ़ होने पर उसने अपना नाम महेन्द्रवर्मन् रक्खा। इसका एक लेख[३] सम्बोर के नीचे मेकांग की तराई

१—सुदूर पूर्व पत्रिका, भाग ३, पृ० २७५।

२—देखिये चित्रसेन का फूलोखोन लेख; मजुमदार : कम्बुज लेख नं० १५, पृ० २०।

> नप्ता श्री सार्व्वभौमस्य सूनुश्श्रीवीरवर्मणः।
> शक्तयानूनकनिष्ठोपि भ्राता श्रीभववर्म्मणः। १।

३—देखिये चित्रसेन का थम-क्रे लेख जिसमें एक शिवलिंग की

में मिला है जिससे प्रतीत होता है कि उसने अपना राज्य दक्षिण की ओर बढ़ाया। चीनी ग्रन्थ सुई वंश के इतिहास में भी इसकी राज्य-विजय का उल्लेख है। भववर्मन् और चित्र-वर्मन् ने लगभग ५५० ई० से ६०० ई० तक राज्य किया। इसके समय में एक राजदूत चम्पा भेजा गया[१] जिसका उद्देश्य वहाँ से मित्रता स्थापित करना था।

ईशानवर्मन्—चीनी ग्रन्थ के अनुसार महेन्द्रवर्मन्-चित्रसेन के पश्चात् उसके पुत्र ईशानवर्मन् का राज्याभिषेक हुआ। इसने ईशान नामक एक नगर बसाया जो उसकी राजधानी थी।[२] इसके लेख अधिकतर मेकांग की घाटी, जहाँ मुननदी

स्थापना का उल्लेख है (मजुमदार : कम्बुज लेख नं०१४, पृ० १९; सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३, पृ० २१)। इस लेख की दो और प्रतिलिपियां बोल कन्तेल के दक्षिण तथा स्याम के राजक्षिमा प्रान्त में मिली हैं (देखिये सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ४ पृ० ७३९ : तथा भाग २२, पृ०९२)

१—देखिये आंग चुम्बिक लेख जो जयवर्मन् प्रथम के समय का है और इसकी तिथि ५८९ शक संवत् है। इस लेख में रुद्रवर्मन, भव-वर्मन्, महेन्द्रवर्मन् तथा ईशानवर्मन् का भी उल्लेख है। महेन्द्रवर्मन् के समय में जो दूत चम्पा भेजा गया, उसका उल्लेख इस लेख में है।

सिंहदेवोऽनुजो राज्ञा दूतत्वे सत्कृतः कृती
प्रीतये प्रेषितः प्रेम्णा चम्पाधिपनराधिपम् ॥८॥

(मजुमदार : कम्बुज लेख नं० ३० पृ० ३९; पेरिस की एशियाटिक सभा की पत्रिका १८८२ (१) पृ० १९५ से; आमोनिये : कम्बुज लेख, भाग १ पृ० २४३)।

२—इस नगर की समानता सम्भोर प्राई कुक से की जाती है जहाँ इस सम्राट् के बहुत से लेख मिले हैं (देखिये फिनो : 'कम्बुज के नये लेख' हिन्द-चीन का पुरातात्विक समाचार १९१२, पृ० १८४-८९; कोड सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २८, पृ० १२५)

से उस नदी का संगम हुआ है, से लेकर उसके मुहाने तक मिले हैं। इनसे प्रतीत होता है कि कम्पानस्वे से लेकर दक्षिण में वांग और वप नाम तक का प्रान्त इसके अधिकार में था।[१] सम्भोरप्राई के एक लेख से पता चलता है कि इसकी राज्ञी का नाम साकारमञ्जरी था। ह्वान्तसाँग के मतानुसार इसके साम्राज्य में हिन्द-चीन का मध्य भाग, मध्यस्याम का द्वारावती राज्य तथा महाचम्पा अथवा अनाम सम्मिलित थे।[२] इनमें से सम्बोर के एक लेख में ईशानवर्मन् का भारत के साथ सम्बन्ध का उल्लेख है।[३] इसके राज्य काल में ६१६ ईसवी में एक राजदूत चीन भेजा गया।[४] यह कदाचित् अन्तिम था क्योंकि बहुत काल तक चीन के साथ सम्पर्क स्थापित न रह सका। ईशानवर्मन् ने चम्पा के घरेलू झगड़ों में भी हस्तक्षेप किया

१—'टांग वंश के नवीन इतिहास' के अनुसार फूनान पर पूर्णतया अधिकार इस सम्राट् के समय में हुआ था (देखिये पिलियो : फूनान पृ० २७५)।

२—वील : ह्वान्तसाँग भाग २, पृ २००। स्याम की सीमा पर छान्तवून नामक स्थान पर मिले एक लेख के अनुसार यह प्रान्त ईशान-वर्मन् के अधिकार में था। (सुदूरपूर्व पत्रिका भाग २४, पृ० ३५२–३५८)। लाजाँकिये का मत है कि इस प्रान्त तक ९वीं शताब्दी से पहिले ख्मेर राज्य नहीं पहुँच सका किन्तु छान्तवून के लेख, जिसमें ईशानवर्मन् का नाम लिखा है तथा खलुग में मिले एक अन्य लेख के आधार पर ख्मेर सम्राट् का इस क्षेत्र पर अधिकार माना जाता है (मजुमदार : कम्बुज, देश पृ० ५६, नोट १५)।

३—मजुमदार : कम्बुज लेख नं० ४, पृ० २३।

४—पिलियो : सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २, पृ० १२४, भाग ३, पृ० २७२।

क्योंकि इसकी पुत्री श्री सर्वाणी का विवाह चम्पा के जगद्धर्म के साथ हुआ था और अन्त में उसका पुत्र प्रकाशधर्म चम्पा के सिंहासन पर बैठा।[१]

भववर्मन् द्वितीय—नोम पेन्ह के ५६१ शक सम्वत् के एक लेख[२] से पता चलता है कि भववर्मन् नामक एक राजा था। इसने लगभग ६३५ से ६५० ई० तक राज्य किया क्योंकि जयवर्मन् प्रथम का पहिला लेख शक[३] सम्वत् ५९६ ई०-६५७ ई० का है। इसका एक और लेख नोम-वयन[४] में मिला है जिसमें उत्पन्नेश्वर देवता की मूर्ति स्थापना का उल्लेख है। इसमें उल्लिखित कौंग वर्मन् नामक शब्द गंगराजाओं के लेखों में भी पाया जाता है।[५]

जयवर्मन् प्रथम—इस वंश का अन्तिम राजा जयवर्मन् प्रथम था और इसने ६५७ ई० से ६८१ ई०[६] तक राज्य किया। इसके समय के कई लेख क्रमशः शक सम्वत् से लेकर

१—देखिये—प्रकाशधर्म का माईसोन का लेख श्लोक २३; फिनो: सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ४, पृ० ९१८; कोड : यही; भाग १२ नं० ८; पृ० १५; मजुमदार : चम्पा पृ० ३९-४५, तथा भाग ३, पृ० १६।

२—कदाचित् यह लेख तकेओ प्रान्त में पाया गया था और अब सुदूरपूर्व के फ्रांसीसी स्कूल में है। इसमें सम्राट् द्वारा देवी चतुर्भुजा की मूर्ति स्थापना का उल्लेख है। देखिये कोड : सुदूरपूर्व पत्रिका भाग ४ पृ० ६९१ से।

३—फिनो : कम्पोंग रासेई का लेख-सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग १८ (१०), पृ० १५।

४—कोड : कम्बुज लेख भाग १, पृ० २५२।

५—बृहत्तर भारत पत्रिका, भाग ४, पृ० १५६।

६—कोड : कम्बुज लेख भाग २, पृ० ४०।

५७६, ५८७, ५८६, ५६५, ५६६ तथा ६०३[१] के मिले हैं। अन्तिम लेख में इसे ब्रह्म-क्षत्र वंशज कहा गया है। इन लेखों के प्राप्त स्थानों से पता चलता है कि इसका राज्य कम्बुज के कम्पौं-स्वे से लेकर दक्षिणी भाग तक फैला था। टांग वंश के प्राचीन इतिहास से पता चलता है कि काम्रौ-टसाँग (६५०–६८३ ई०) के समय में यहीं से एक राजदूत चीन गया था।[२] भववर्मन् प्रथम से लेकर जयवर्मन् प्रथम के समय तक का काल–अंगकोर के पूर्वार्द्ध का समय कहलाता है और इस काल में जीते हुए प्रान्तों को एक राजनैतिक सूत्र में बाँधा गया। इस सम्राट् के पश्चात् कम्बुज देश का इतिहास अन्धकारमय हो जाता है। लगभग सौ वर्ष का यह काल ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस समय की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राज-प्रणाली और कला के विषय में हमें बहुत जानकारी प्राप्त है पर इसका विवरण हम आगे चल कर करेंगे।

१—मजुमदार : कम्बुज लेख नं० २८, ४१ पृ० तक।
२—कोड : हिन्दू राष्ट्र, पृ० १२४।

अध्याय ४

कम्बुज का विभाजन

चीनी ग्रन्थों के अनुसार ईसा की आठवीं शताब्दी में कम्बुज साम्राज्य दो भागों में विभाजित था। तांग वंश के विवरण से प्रतीत होता है कि कम्बुज में एक स्थल—कम्बुज था जिसे वेन-तन-पु कहते थे और दूसरा जल-कम्बुज था।[१] पहिले भाग में उत्तरी पहाड़ियाँ और घाटियाँ थीं और दूसरे में दक्षिणी भाग था जिसमें अधिकतर सरोवर आदि थे। च-खान-लिन के आधार पर दूसरा भाग कोई ८०० ली अथवा १३३ मील की दूरी तक था।[२] डा० मजुमदार को कहना है[३] कि उत्तरी भाग में लाओस का अधिक भाग था और यह चीनी प्रान्त टोंकिन तथा थाई के यूनान तक सीमित था। चीन के निकट होने के कारण उत्तरी भाग का उस देश से सम्बन्ध था और यहाँ से ७१७ ई० में एक दूत चीन भेजा गया।[४] इस प्रान्त का शक्तिशाली होना इस बात से सिद्ध होता था कि ५ वर्ष पश्चात् अनाम में एक सरदार माई-ह्वेन-चैंग को इसने

१—इस काल के इतिहास का विशेष अध्ययन डूपो ने अपने लेख 'चेन-ला' में किया है जो सुदूरपूर्व पत्रिका में छपा है (भाग ४३, पृ० १७)।

२—सुदूरपूर्व पत्रिका भाग ३६, पृ० १।

३—कम्बुज देश पृ० ६८।

४—पिलियो : 'दो यात्रायें', सुदूरपूर्व पत्रिका, पृ० २१२।

चीन के विरुद्ध सहायता दी और उसे हरा दिया।[१] थोड़े समय बाद इसका चीन के साथ फिर सम्बन्ध स्थापित हो गया। ७५३ ई० में सम्राट् का पुत्र अन्य पुरुषों सहित चीन गया और ७७१ में पो–मी नामक राजा स्वयं चीन गया। ७९९ में यहाँ से अन्तिम राजदूत चीन भेजा गया।[२] चीनी वृत्तान्तों में इस उत्तरी कम्बुज की सीमाओं का कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है पर इसमें सन्देह नहीं कि यह चीन के आधीन टोंकिन प्रान्त के निकट था। इससे अधिक विवरण नहीं प्राप्त हो सका है।

दक्षिणी कम्बुज—जल कम्बुज वास्तव में कम्बुज का दक्षिणी भाग था जिसकी सीमा का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यहाँ पर तत्कालीन कई लेख मिले हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि यहाँ कई छोटे-छोटे राज्य थे। प्रे–रूप और मेबान में मिले दो लेखों[३] से पता चलता है कि पुष्कर नामक एक राजा था, जो कि नृपतीन्द्रवर्मन् का पुत्र था। उसकी मां का नाम सरस्वती था और वह बालादित्य की बहिन का दौहित्र था। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि कम्बुज देश में माता से वंश चलता है। यह राज्य-कुल प्रसिद्ध कौण्डिन्य और उसकी राज्ञी सोमा से सम्बन्धित था। पुष्कर अनिन्दितपुर के राजा का वंशज था और उसने शम्भुपुर नामक राज्य पर

१—मास्पेरो : 'अनाम और चम्पा की सीमा'—८ से १४वीं शताब्दी तक'—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग १८ (३), पृ० २९।

२—पिलियो 'दो यात्रायें'—इसमें टांग वंश के ऐतिहासिक काल में कम्बुज देश की मुख्य घटनाओं का उल्लेख है। पृ० २१२।

३—मजुमदार : कम्बुज, लेख नं० ९७, ९३।

भी अधिकार प्राप्त कर लिया था। इसी वंश में राजेन्द्रवर्मन् नामक एक राजा हुआ था जिसकी माँ व्याधपुर के वंश की थी, और इसने भी शम्भुपुर में राज्य किया। इन लेखों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि इस समय तीन छोटे-छोटे राज्य थे जो क्रमशः शम्भुपुर, व्याधपुर और अनिन्दितपुर के नाम से प्रसिद्ध थे। कदाचित् यही उनकी राजधानी रही होगी। शम्भुपुर की समानता मेकांग पर स्थित सम्भोर से की जाती है।[१] व्याधपुर के विषय में अमोनिये का विचार है कि यह अंगकोर बोराई में स्थित था, पर कोड के मतानुसार यह वा-नोम पहाड़ी के नीचे बसा था।[२] इस फ्रांसीसी विद्वान् के मतानुसार[३] अनिन्दितपुर का तीसरा राज्य अंगकोर के पूर्व में प्रसिद्ध सरोवर के उत्तर की ओर होना चाहिये। इन छोटे-छोटे राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में कहना कठिन है। कुछ विद्वानों का विचार है कि शम्भुपुर और व्याधपुर राजेन्द्रवर्मन् के समय में एक में मिला दिये गये थे, पर लेखों से तो केवल इतना प्रतीत होता है कि इसकी राज्ञी व्याधपुर अधिराज की वंशज थी।[४] वास्तव में शम्भुपुर और व्याध-

---

१—आमोनिये : कम्बुज लेख भाग १, पृ० ३०९; कोड के मतानुसार शम्भुपुर क्रेच से ऊपर मेकांग पर स्थित है जहाँ पर ७१६ ई० का एक लेख भी मिला। इसमें पुष्कर द्वारा पुष्करेश देवता की मूर्ति स्थापना का उल्लेख है। (सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ४, पृ० ६७५, मजुमदार—नं० ५०, पृ० ५५)।

२—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २८, पृ० १२७-१३१।

३—यही, पृ० १३३।

४—बेरगेन के मतानुसार यशोवर्मन् के आदि-पितामह राजेन्द्रवर्मन् ने व्याधपुर की राजकुमारी से विवाह किया था और इस वैवाहिक

पुर दो पृथक् राज्य थे। यह कहा जा सकता है कि उत्तरी कम्बुज की राजधानी शम्भुपुर (सम्भोर) थी और दक्षिण की व्याधपुर।

शम्भुवर्मन–नृपादित्य—आठवीं शताब्दी के कम्बुज के अंधकारमय इतिहास पर प्रकाश डालने के लिए हमें कोचिन-चीन में मिले तीन लेखों[१] से भी कुछ सहायता मिलती है। थप-मुसी में मिले एक लेख में श्री पुष्कराक्ष की मूर्ति स्थापना अथवा मन्दिर-निर्माण का उल्लेख है जिसे शम्भुवर्मन् नामक राजा ने किया था। इस मन्दिर का उल्लेख वहीं पर मिले एक दूसरे लेख में है जिसमें पुष्पस्वामी की मूर्ति स्थापना का विवरण है। तीसरा लेख नुई-ब-थे (लानज्देन विषय) में मिला है और इसमें वर्धमानलिंग की स्थापना का उल्लेख है। इस पुण्य कार्य का फल राजा श्री नृपादित्य को दिया गया था। इन लेखों से केवल शम्भुवर्मन् और नृपादित्य के अस्तित्व का पता चलता है और यह भी प्रतीत है कि इनका पहिले का सम्बन्ध पुष्कर राजा के साथ था। एक अन्य लेख[२] में, जो ६३८ शक संवत् ७१६ ई० का है, और व्रत्ते के प्रहथत में पाया गया है, लिखा है कि पुष्कर ने पुष्कराक्ष देवता की मूर्ति-स्थापना की जिसमें ब्राह्मणों और यतियों ने भाग लिया।

सम्बन्ध से इसका व्याधपुर पर अधिकार हो गया था। यशोवर्मन् के लेखों से इसकी पुष्टता नहीं होती है। सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २८,

१—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २६, पृ० ३।

२—फिनो : प्रे-थेत-कवन लेख—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ४, पृ० ६७५।

शम्भुवर्मन् का सम्बन्ध शम्भुपुर अथवा सम्भोर से हो सकता है। अतः कोचिन-चीन में मिले लेखों में उल्लिखित यह दो नृप कम्बुज के अन्धकारमय युग में कदाचित् राज्य कर रहे थे। इनमें से किसी का यशोवर्मन् अथवा राजेन्द्रवर्मन् से सम्बन्ध नहीं दिखाया जा सकता है क्योंकि उनके लेखों में इनका नाम नहीं मिलता है। इनके अतिरिक्त शक संवत् ७२५-८०३ ई० के एक ख्मेर लेख में[१] राज्ञी ज्येष्ठार्या के दान का उल्लेख है। यह नृप जयेन्द्र, राज्ञी नृपेन्द्र देवी तथा नृप इन्द्रलोक की वंशज थी। यह लेख सम्भोर के एक मन्दिर पर खुदा है। इन लेखों से यह ज्ञात होता हैं कि कम्बुज में छोटे-छोटे कई राज्य थे और सम्भोर के राजा प्रधान थे। इनके समय का पूर्णतया विवरण हमें कहीं भी नहीं मिलता है। इस सम्बन्ध में कोड ने चीन ग्रन्थ तथा लेखों से उद्धृत विवरण के आधार पर लिखा है कि जल कम्बुज में अनिन्दितपुर और सम्भोर सम्मिलित थे तथा स्थल कम्बुज से डन्ग्रेक पहाड़ों से उत्तर प्रान्तों का संकेत है।[२]

जावा का कम्बुज पर अस्थायी अधिकार––आठवीं शताब्दी में शैलेन्द्र वंश का उद्गम हुआ। इस वंश की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों का एक मत नहीं है।[३] कुछ का कहना है कि इस

१––मजुमदार : वत-तसर-मोरो लेख––कम्बुज लेख नं० ५२, पृ० ५७।

२––सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २६, पृ० १। इस लेख में कोड ने अन्य विद्वानों की सम्मतियों पर भी विचार किया है।

३––डा० मजुमदार के अनुसार शैलेन्द्र कलिंग निवासी थे और बरमनी तथा मलाया से आगे बढ़े थे। सुवर्ण द्वीप पृ० २२५-२७; सुदूर-

वंश के पूर्वज कलिंग से आये थे, पर इसके विपरीत अन्य विद्वानों का विचार है कि यह दक्षिण के निवासी थे। यहाँ इस प्रश्न पर वाद-विवाद करना आवश्यक नहीं है। इस वंश का प्रादुर्भाव इसी शताब्दी में हुआ और शैलेन्द्र साम्राज्य में सुमात्रा, जावा और मलय द्वीप सम्मिलित थे। मलय देश के उत्तरी प्रान्त में इनकी विशेष शक्ति थी इस कारण से कम्बुज देश को इनकी ओर से सदैव भय रहता था। लेखों से यह प्रतीत होता है कि कुछ समय के लिए कम्बुज देश पर जावा का अधिकार हो गया था। जावा के राजा संजय के एक ७३२ ई० के लेख[१] में लिखा है कि उसने कई निकटवर्ती राजाओं को हराया और उनके

पूर्व पत्रिका, भाग १, पृ० ११-२७। प्रो० नीलकण्ठ शास्त्री का मत इससे भिन्न है। इनके विचार में पाण्ड्य देश से हिन्दू जावा की ओर गये और शैलेन्द्र राजाओं का यही उद्गम स्थान था। (राजकीय बटाविया सभा की पत्रिका, भाग ७५, पृ० ६०५-११)। कोड का कथन है कि हिन्द-चीन के फूनान राजाओं का अन्त होने पर जावा का कोई राजकुमार, जिसका इस देश से कुछ सम्बन्ध रहा होगा, वहाँ गया और वहाँ के राजा का पद ग्रहण किया। शैलेन्द्र शब्द गिरीश का पर्यायवाची है और इसका अर्थ 'पर्वत सम्राट्' है। (वृहत्तर भारत पत्रिका, भाग १, पृ० ६१-७० : हिन्दू राष्ट्र, पृ० १५४)। प्रेजूलेस्की का विचार है कि हिन्दनेशिया ने देवताओं का स्थान पहाड़ पर सीमित किया था। अतः इसी आधार पर राजाओं को भी शैलेन्द्र की उपाधि प्रदान की गई, और यह केवल इस देश की धार्मिक प्रवृत्ति को हिन्दुत्व भाव प्रदान करना था (बृहत्तर भारत पत्रिका, भाग २, पृ० २५-३६)।

१——चटर्जी : 'भारत और जावा' भाग २ लेख पृ० २६-३४। यह संस्कृत लेख बोरोबदूर से दक्षिण-पूर्व की ओर चंगल के शैव बिहार के निकट मिला। इस लेख में यावा द्वीप के कुँजंर-कुंज प्रान्त में एक शिव-लिंग की स्थापना का उल्लेख है।

राज्य पर अधिकार कर लिया। एक अन्य ग्रन्थ[1] में तो यह भी लिखा है कि जावा और बाली पर अधिकार कर इसने सामुद्रिक मार्ग से आगे बढ़ना आरम्भ किया और मलय की ओर बढ़ता हुआ वह ख्मेर तथा अन्य राजाओं से लड़ा। कम्बुज के एक लेख[2] से भी पता चलता है कि नवीं शताब्दी में इस देश का राजा जावा से आया था। इसका जयवर्मन् द्वितीय से संकेत है जिसका उल्लेख हम आगे करेंगे। जावा के सैनिकों द्वारा सामुद्रिक आक्रमणों का उल्लेख चम्पा से मिले कुछ लेखों में मिलता है। ७८४ ई० के एक लेख में लिखा है कि ७७४ ई० में बाहर के असभ्य पुरुषों ने जहाजों में आकर दक्षिण अनाम के शिव मन्दिर को जला दिया।[3] ७९९ ई० के एक और लेख में लिखा है कि जावा के सैनिक शक सम्वत् ७०९-७८७ ई० में जहाजों में आये और उन्होंने एक मन्दिर को जला दिया।[4] चीनी ग्रन्थों में भी दावा (जावा) के निवासियों का

१—मजुमदार सुवर्ण द्वीप, पृ० २३०।

२—देखिये उदयादित्यवर्मन् का स्डो-काक लेख मजुमदार-कम्बुज लेख पृ० ३६४ : फिनो : सुदूरपूर्व पत्रिका भाग १५ (२) पृ० ५३।

३—देखिये सत्यवर्मन् का पो-नगर लेख मजुमदार-चम्पा : लेख भाग ३, पृ० ४१-४२ : सत्यवर्मन् ने लुटेरों का पीछा करके एक सामुद्रिक युद्ध में उन्हें हराया किन्तु लूटा हुआ कोष अथवा लिंग उनके हाथ न लग सका। अतः सम्राट् ने दूसरे मुखलिंग की स्थापना की।

४—देखिये इन्द्रवर्मन् प्रथम का यंग तिकह लेख मजुमदार : चम्पा लेख भाग ३, पृ० ४४—इन्द्रवर्मन् ने इस मन्दिर का ७२१ शक सं० ७९९ ई० में पुनः निर्माण कराया और इसमें इन्द्रभद्रेश्वर नामक मूर्ति स्थापित की।

अनाम के उत्तरी भाग पर आक्रमण का उल्लेख है जो ७६७ ई० में हुआ था। मासपेरो ने दावा की समानता जावा से की है।[१] अरबी इतिहासकार सुलेमान ने इस सम्बन्ध में एक मनगढ़न्त कथा का उल्लेख किया है।[२] जिसका सारांश यह है कि ख्मेर के महाराज ने ज़ावग के महाराज का कटा शीश देखने की इच्छा प्रकट की पर वास्तव में उसे अपना सिर ही देना पड़ा। इसमें कहाँ तक सत्यता है यह तो कहना कठिन है पर जावग की समानता जावा से की जा सकती है और यह प्रत्यक्ष है कि जावा के राजा ने ख्मेर पर अधिकार कर लिया था जैसा कि हमको अन्य सूत्रों से पता चलता है। कम्बुज की राजधानी का मेकांग नदी के किनारे से हटाना किसी राजनैतिक कारणवश ही हुआ होगा। जावा का कम्बुज पर अधिकार अधिक समय तक स्थापित न रह सका पर इसके फलस्वरूप कम्बुज में तान्त्रिक प्रयोग का प्रादुर्भाव हुआ जिसका उल्लेख हम आगे चलकर करेंगे।

१—मजुमदार : सुवर्णद्वीप, पृ० १५६, मासपेरो : चम्पा का राज्य, पृ० १३०।

२—इलियट तथा डौसन : भारत का इतिहास, उसके इतिहास-कारों द्वारा भाग १,

अध्याय ५

जयवर्मन् द्वितीय और उसके वंशज

कम्बुज राज्य संगठन का पूर्ण श्रेय जयवर्मन् द्वितीय को है। उसने इस देश को जावा के बंधन से मुक्त कराके, एक दृढ़ सूत्र में बाँधने का प्रयास किया। ईसा की नवीं शताब्दी का यह एक महान् शासक हुआ है और जिस प्रकार उत्तरी भारत में सम्राट् मिहिरभोज ने ५० वर्ष के राज्य-काल में प्रतिहार साम्राज्य को बढ़ाया और सुगठित किया, वैसे ही जयवर्मन् ने लगभग उसी काल में कम्बुज देश में एक नई स्फूर्ति डाल दी। देश में एकता स्थापित हो गई जिसका पहिले अभाव था और अब कम्बुज देश जल और स्थल में विभाजित न रहकर एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया। इसी सम्राट् ने कम्बुज देश में भारतीय संस्कृति की नींव और भी दृढ़ बना दी। इसके समय में तान्त्रिकों का इस देश में आगमन हुआ। उसने अपने राज्य में एक प्रकार का तान्त्रिक शैवमत चलाया जो 'देवराज' नाम से ख्यात है और इसके लिए भारत से एक विशेष ब्राह्मण हिरण्यदाम को बुलाया जो तन्त्र क्रियाएँ जानता था। कम्बुज देश में तन्त्रवाद की स्थापना इसलिए हुई कि भविष्य में इस देश पर जावा का अधिकार न हो सके। हिरण्यदाम ने शिवकैवल्य को तान्त्रिक क्रियाएँ सिखाईं और फिर उसके वंशज लगभग २५० वर्ष तक राज्य-पुरोहित रहे।

जयवर्मन् के समय के कोई लेख नहीं मिलते हैं[1] पर इसके वंशजों में यशोवर्मन् के प्रा–बात और नोम–सराडक के क्रमशः शक संवत् ८११, ८१७, ८८६, ८९५ ई० के दो लेख[2], तथा उदयादित्यवर्मन् द्वितीय के स्डोक–काक[3] के लेख से हमें इस सम्राट् के विषय में विशेष ज्ञान उपलब्ध होता है। प्रसत–कोक के ८०५ शक संवत्=८८३ ई० के लेख[4] के अनुसार जयवर्मन् द्वितीय का राज्याभिषेक शक संवत् ७२४-८०२ ई० में हुआ था। इन सूत्रों के आधार पर हम जयवर्मन् के राज्य-काल पर कुछ प्रकाश डाल सकेंगे।

जयवर्मन् का मूल स्थान—जयवर्मन् के मूल स्थान के विषय में यह धारणा है कि यह जावा से कम्बुज आया था और इसने नये वंश की स्थापना की। उदयादित्यवर्मन् के लेख में लिखा है कि परमेश्वर (जयवर्मन् द्वितीय) जावा से कम्बुज देश के इन्द्रपुर नामक स्थान में आया था और श्री महेन्द्र पर्वत पर नगर में एक देवता की स्थापना की जिसकी पूजा का भार

१—लोबोक श्रोत का शक संवत् ७०३-७८१ ई० के एक लेख में 'ब्रह्म-क्षत्र' कुल के सम्राट् जयवर्मन् ने एक मूर्ति स्थापना की थी (कोड का कथन है कि यह जयवर्मन् द्वितीय था (सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २८, पृ० ११६)। यदि यह मान लिया जाय तो जयवर्मन् द्वितीय का राज्याभिषेक २१ वर्ष पहिले होना चाहिए। यह अन्य लेखों से विपरीत प्रतीत होता है। इस विषय पर आगे विचार किया जायेगा।

२—मजुमदार : कम्बुज लेख नं० ६०, पृ० ७४ से तथा नं० ७३, पृ० १५० से।

३—यही पुस्तक : नं० १५२, पृ० ३६२ से : फ़िनो-सुदूरपूर्व पत्रिका भाग १५ (२), पृ० ५३।

४—यही पुस्तक नं० ५८, पृ० ७०।

भद्रपत्तन को सौंपा गया। यह वंश पहिले अनिन्दितपुर में रहता था। जयवर्मन् के पूर्वजों का कुछ पता नहीं चलता है पर इस का अनिन्दितपुर के पुष्कराक्ष से कुछ सम्बन्ध अवश्य था। प्रा-वात के यशोवर्मन् के लेख से पता चलता है कि जयवर्मन् की नानी की माँ पुष्कर की बहिन थी। इससे प्रतीत होता है कि अनिन्दितपुर राज्य पर इसका माता की ओर से कुछ अधिकार पहुँचता था। नोम-सण्डक के लेख के आधार पर कहा जाता है कि इसने एक नया वंश चलाया और इसकी उपमा सरसि से निकले नये कमल से दी गई है। अतः उपमा एक नवीन वंश की स्थापना का संकेत करती है।[1] इस सम्बन्ध में एक लेख में जयेन्द्राधिपतिवर्मन्[2] का उल्लेख है जिसे जयवर्मन् द्वितीय का मामा कहा गया है। इधर ८०३ ई० के एक और लेख[3] में सम्राज्ञी ज्येष्टायी के दान के साथ जयेन्द्र, राज्ञी नृपेन्द्रदेवी और राजा श्रीन्द्रलोक का नाम मिलता है। यदि जयेन्द्र और जयेन्द्राधिपति की समानता मान ली जाय तो जयवर्मन् का अनिन्दितपुर और शम्भुपुर के वंश से कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य स्थापित किया जा सकता है। पर यह भी मानना पड़ेगा कि वह राज्य स्थापित करने के लिए जावा से आया था। इस गुत्थी को सुलझाने के लिए कोड का कहना है[4] कि जयवर्मन् कम्बुज वंशज अवश्य था पर आठवीं शताब्दी के अन्त में देश की परिस्थिति बिगड़ने के कारण वह जावा चला गया था।

१—योऽभूत्प्रजोदयायैव राजवंशेऽतिऽनिर्म्मले।
अपङ्कजमहापद्मे पद्मोद्भव इवोदितः ॥८॥
२—कोड : कम्बुज लेख, भाग १, पृ० ३७-४४।
३—मजुमदार : कम्बुज लेख नं ५३, पृ० ५७ तथा पृ० ५७१।
४—हिन्दू राष्ट्र, पृ० १६२।

उसने अपने देश वापस आने का कई बार प्रयास किया होगा पर सफलता लगभग ८०२ ई० में मिली जब उसने कम्बुज लौटकर अपने पैतृक अथवा मातृक राज्य पर अधिकार कर लिया। इसकी सफलता अस्थायी प्रतीत होती है क्योंकि उसने कई राजधानियाँ बदलीं जिनका उल्लेख करना आवश्यक है।

राजधानियाँ—स्डोक-काक के लेख से हमें ज्ञात होता है कि जयवर्मन् ने कई नगरों की स्थापना की जो कदाचित् इसकी राजधानियाँ रही होंगी।[१] इन्द्रपुर छोड़ने के बाद वह पूर्वदिश विषय में आया और शिवकैवल्य और उसका कुटुम्ब भी उसके साथ हो लिया। उसने कुटि नामक एक गाँव को बसाया और यह उसी ब्राह्मण कुल को दे दिया। इसके बाद सम्राट् हरिहरालय नगर गये और शिवकैवल्य भी उनके साथ थे। तत्पश्चात् सम्राट् ने अमरेन्द्रपुर की स्थापना की, और वहाँ से वह महेन्द्रपर्वत गये। इन सब स्थानों पर शिवकैवल्य अपने कुटुम्ब सहित गये। यहाँ से सम्राट् हरिहरालय फिर वापस आ गये और मृत्युकाल तक वहीं रहे। इन प्राचीन नगरों की वर्तमान समानता दिखाने के लिए फ्रांसीसी विद्वानों ने कम्बुज देश के प्राचीन भग्नावशेषों का आश्रय लिया है। इन्द्रपुर के विषय में कोड का कहना है कि यह कोमपोंग क्षेत्र में था और इसकी समानता वर्तमान वन्ते-प्राई-नोकोर से की जा सकती है क्योंकि यहाँ पर ख्मेर

१—कोड : 'जयवर्मन् द्वितीय की राजधानियाँ' सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २८, पृ० ११७-१९। इस विद्वान् ने उपर्युक्त लेख में गवेषणात्मक रूप से इस विषय पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। दूसरे फ्रांसीसी विद्वान् स्टर्न ने भी इस विषय में विशेष अध्ययन किया है जो उल्लेखनीय है (देखिये सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३८, पृ० ३३३)।

युग के प्राचीन भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं। स्टर्न ने इसे अंगकोर के निकट वरे में रक्खा है।[१] पूर्व दिशा में स्थित दूसरा नगर कुटि अंगकोर से पूर्व में स्थित था और वन्ते-कदे का प्राचीन मन्दिर इसका प्रमाण है।[२] हरिहरालय की समानता अमोनिये ने अंगकोर-थोम के उत्तर में प्राखन से की है। पर कोड के मतानुसार यह प्राचीन स्थान अंगकोर के दक्षिण-पूर्व में था।[३] खोदाई करने पर इसकी पुष्टि हो चुकी है। इसकी समानता वर्तमान लोले से की जा सकती है। अमरेन्द्रपुर के विषय में विद्वानों का मत भिन्न है और कोड का कहना है कि यह बटमबाँग प्रान्त के उत्तर में स्थित रहा होगा।[४] महेन्द्रपर्वत की समानता नोम-कुलेन से की जा सकती है।[५] इन राजधानियों

१—हिन्दूराष्ट्र, पृ० १६६; सुदूरपूर्व पत्रिका भाग ३८, पृ० ३३३।

२—इस स्थान के तीन प्राचीन मन्दिरों, जिनको कुटीश्वर नाम से संबोधित किया जाता है, का पूर्ण विवरण सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३७, पृ० ३३३ से आगे मिलता है।

३—'प्राचीन राजधानियाँ'—सुदूरपूर्व पत्रिका भाग २८, पृ० १२१, तथा कम्बुज लेख भाग १, पृ० १८७। यहाँ पर अंगकोर काल से पहिले के भी भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं जिनमें से कुछ का तो जयवर्मन् ने पुनः निर्माण कराया और कुछ नये बनवाये।

४—आमोनिये ने अमरेन्द्रपुर की समानता बन्ते चमर से की थी (कम्बुज भाग ३, पृ० ४७०) और ग्रोसलिये ने इस धारणा की पुष्टि करना चाहा था (देखिये इसका लेख—'अमोघपुर में अमरेन्द्रपुर'-सुदूरपूर्व पत्रिका भाग २४, पृ० ३५६, ३७२) किन्तु वन्ते चमर का मन्दिर १२वीं शताब्दी का प्रतीत होता है और इसे जयवर्मन् द्वितीय के समय का नहीं कहा जा सकता है।

५—आमोनिये : कम्बुज भाग १, पृ० ४२५, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग

का बदलना या तो समाट् की अपनी इच्छा के कारण अथवा परिस्थितिवश हुआ। डा० मजुमदार का कहना है[१] कि कदाचित् जयवर्मन् को अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए इधर उधर घूमना पड़ा हो और उसका राज्य-काल इतना शान्तिमय न हो जैसा कि सोचा जाता है।

कम्बुज का विदेश से सम्बन्ध—चम्पा के राजा हरिवर्मन् के पो-नगर लेख[२] से पता चलता है कि उसके एक सेनापति ने कम्बुज में घुसकर देश को बड़ी हानि पहुँचाई। यह घटना शक संवत् ७३९ अर्थात् ८१७ ई० में हुई थी। जिससे यह प्रतीत होता है कि जयवर्मन् द्वितीय के समय में कम्बुज देश को चम्पा की ओर से राजनैतिक धक्का लगा। कदाचित् इसी कारणवश उसे पश्चिम की ओर अपनी राजधानी हटानी पड़ी। चम्पा का यह आक्रमण कम्बुज के लिए विशेष हानिकर नहीं हुआ। थोड़े समय बाद वह अंगकोर फिर लौट आया।

राज्य-विस्तार और अन्त—अपने ५० वर्ष के शासन-काल में जयवर्मन् ने देश में एकता स्थापित की। इसके राज्य में पूरा कम्बुज देश और लाओस सम्मिलित थे। चीनी

२८, पृ० १५१-१७३ : कोड : हिन्दू राष्ट्र पृ० १७२। इस विषय में वर्तमान पुरातात्विक खोज से यह प्रमाणित हो गया कि यहाँ के भग्नावशेष प्राचीन ख्मेर और इन्द्रवर्मन् के बीच के काल के हैं, अतः इनको जयवर्मन् द्वितीय के समय का माना जा सकता है। इस आधार पर आमोनये की धारणा ठीक प्रतीत होती है (देखिये, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३६ पृ० ६२०); स्टर्न का लेख 'नोमकुलेन में निर्मारिणत भग्नावशेष'—यही पत्रिका भाग ३७, पृ० ३३३ से)।

१—कम्बुज देश, पृ० ८२।

२—मजुमदार : चम्पा, भाग ३, पृ० ६१।

ग्रन्थ मन-चु[१], जो ८६३ ई० में लिखा गया था, के अनुसार ख्मेर राज्य उत्तर में ननयाओं में चेन-नान तक फैला हुआ था। इससे कदाचित् टोंकिन से पश्चिम आल्विराष्ट्र से संकेत रहा होगा। अरब लेखक याकूबी लगभग ८७५ या ८८० ई० में लिखता है कि ख्मेर राज्य बृहत् और शक्तिशाली था और सम्राट् के आधीन कई राज्य थे। सन् ९०३ में एक और अरब लेखक इवन रोस्तेह ने यहाँ के शासन की प्रशंसा की है और उसने कुछ और बातों का उल्लेख किया है जो मनगढ़ंत प्रतीत होती हैं, जैसे मुर्गों की लड़ाई से ५० मन सोने की नित्य आय होती है। मसूदी ने इस देश का कुछ भौगोलिक वर्णन किया है।[२] जयवर्मन् के मृत्यु-काल के विषय में कोई वाद-विवाद नहीं है। कोड के मतानुसार[३] इसकी मृत्यु ८५० ई० में हुई और इसका पुत्र जयवर्द्धन् जयवर्मन् तृतीय के नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ। मृत्यु के पश्चात् जयवर्मन् द्वितीय को परमेश्वर के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा।

जयवर्मन् तृतीय—जयवर्मन् तृतीय की माँ पवित्रा किसी

१—एशियाटिक अध्ययन, भाग २, पृ० ९४, मजुमदार : कम्बुज देश पृ० ८९।

२—फेरेन्द : मूल पृ० ४८, ७१, ७८; मजुमदार : कम्बुज देश, पृ० ९०।

३—कोड : 'अंगकोर वंशजों के कुछ राजाओं की राज्याभिषेक तिथियाँ'—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ४३, पृ० १२। प्रसतचक के लेख के अनुसार जयवर्मन् तृतीय का शक संवत् ७९१ में राज्याभिषेक का सोलहवाँ वर्ष था। अतः उसका राज्याभिषेक और जयवर्मन् द्वितीय की मृत्यु शक संवत् ७७६-८५४ ई० में रखना चाहिए।

राज्य वंश की थी।[१] इसकी माँ के अतिरिक्त जयवर्मन् द्वितीय की दो और रानियाँ थीं—कम्बुजलक्ष्मी तथा धरनीन्द्रदेवी। पवित्रा अग्रमहिषी थी और दूसरी कम्बुज लक्ष्मी थी जिसके धर्मवर्द्धन् नामक एक पुत्र भी था। प्रसत—चक[२] के लेख से पता चलता है कि शक संवत् ७९१ में जयवर्मन् तृतीय के राज्य-काल का सोलहवाँ वर्ष था। उसने शक ब्राह्मण की मूर्ति स्थापना विष्णु ग्राम नामक स्थान में की थी। अत: वह शक सं० ७७६-८५४ ई० में अपने पिता की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा। ९११ शक संवत् के एक लेख में, शक संवत् ७८२ में (विष्णु लोक) के समय में किये गये दानों का उल्लेख है। इनका जयवर्मन् तृतीय से सम्बन्ध रहा होगा। इसके समय का कुछ विवरण हमें चीनी ग्रन्थ में मिलता है जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। उसके आधार पर यह कहा जा सकता है जयवर्मन् तृतीय ने अपने पिता के राज्य को बढ़ाने का उद्योग किया होगा। इस सम्राट् ने ८५४ ई० से ८७७ ई० तक राज्य किया और मृत्यु के पश्चात् उसे 'विष्णु लोक' नाम से सम्बोधित किया गया।

१—मजुमदार : कम्बुज लेख, नं० १४८, पृ० ३५३; कम्बुज देश पृ०८५।

२—कोड : सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २८, पृ० ११५ से।

अध्याय ६

अंगकोर राज्य की स्थापना (८७७-१००१ ई०)

जयवर्मन् तृतीय की मृत्यु के पश्चात्, इन्द्रवर्मन् नामक राजा कम्बुज के सिंहासन पर बैठा। इस समय से लेकर १००१ तक कोई ७ शासक हुए और उन्होंने इसके उत्थान में बड़ा सहयोग दिया। कम्बुज के इतिहास में यह विशेष महत्त्वपूर्ण काल है। इन्द्रवर्मन्, यशोवर्मन् और राजेन्द्रवर्मन् नामक प्रतापी सम्राटों ने कम्बुज राज्य की सीमा उत्तर में चीन की दक्षिणी सीमा तक पहुँचा दी थी और उसका लोहा निकटवर्ती चम्पा तथा यवद्वीप के राजा भी मानते थे। इसी काल में भारतीय संस्कृति, कला और साहित्य ने भी यहाँ बड़ी उन्नति की। ब्राह्मण और बौद्ध धर्म पूर्ण रूप से विकसित हुए। धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में भी बड़ी प्रगति हुई। इस अध्याय में हम अपना वृत्तान्त केवल राजनैतिक क्षेत्र तक ही सीमित रखेंगे। सांस्कृतिक विवरण, कला इत्यादि का उल्लेख आगे चल कर किया जायगा।

इन्द्रवर्मन्—इन्द्रवर्मन् का जयवर्मन् के वंश के साथ सम्बन्ध था। इसके कई लेखों[1] से पता चलता है कि उसके पिता

१—देखिये इन्द्रवर्मन् का प्राह खो-लेख; मजुमदार : कम्बुज लेख नं० ५५, पृ० ६१।

राज्ञी राजपरस्परोदितवती श्री रुद्रवर्मात्मजा।
राज श्रीनृपतीन्द्रवर्म्मतनया जाता सती या भवत्।
पत्नी श्री पृथिवीन्द्रवर्म्मनृपतेः क्षत्रान्वयाप्तोद्गतेस।
तस्या भूमिपतिस् सुतोनृपनतो यश् श्रीन्द्रवर्म्मोह्वयः ।।४।।

पृथ्वीवर्मन् की मां और जयवर्मन् द्वितीय की स्त्री की माँ सगी बहिनें थीं। इस प्रकार जयवर्मन् तृतीय का इन्द्रवर्मन् फुफेरा भाई लगता था। पृथ्वीवर्मन् के मामा रुद्रवर्मन् को नृपतीन्द्र-वर्मन् की लड़की ब्याही थी और यह तीनों कहीं के स्थानिक शासक रहे होंगे। या तो वे जयवर्मन् के आधीन थे अथवा उससे पहिले हुए होंगे। इन्द्रवर्मन् के पुत्र यशोवर्मन के एक लेख[१] से पता चलता है कि इसकी माँ राजा महीपतिवर्मन् की लड़की थी जो राजेन्द्रवर्मन् और उसकी रानीं नृपतीन्द्रदेवी का पुत्र था। राजेन्द्रवर्मन् की माता व्याधपुर की थी और यह पुष्कराक्ष का वंशज था। इन वृत्तान्तों से प्रतीत होता है कि इन्द्रवर्मन् राज वंशज अवश्य था और उसने समय पाकर कम्बुज के राज्य पर अधिकार कर लिया। इन्द्रवर्मन् का एक लेख[२] शक सं० ८०१–८७९ ई० का है जिसमें उसके गुरु शिवसोम का उल्लेख है जिसने शंकराचार्य्य के चरणों में शास्त्रों का अध्ययन किया था। यह शिवसोम जयवर्मन् द्वितीय के मातुल का पौत्र था। इस धार्मिक प्रसंग पर हम आगे चलकर विचार करेंगे।

१—यशोवर्मन् का प्राह-वात लेख :—मजुमदार : कम्बुज लेख नं० ६० श्लोक १-४ : तथा इसी सम्राट् का लोले का लेख : यही पुस्तक नं० ६१।

२—प्रसत कन्डोल लेख—कोड : कम्बुज लेख, पृ० ३७; मजुमदार : कम्बुज लेख नं० ५४, पृ० ५७। इन्द्रवर्मन् का गुरु जिसने लेख की रचना की थी, जयेन्द्राधिपतिवर्मन् का पौत्र था जो जयवर्मन् द्वितीय का मातुल था। (श्लोक ३०) इस शिवसोम ने भगवान् शंकर के चरणों में शास्त्रों का अध्ययन किया था। इस विषय पर प्रो० नीलकण्ठ शास्त्री का 'शंकर की तिथि' नामक लेख देखिये जो मद्रास की प्राच्य पत्रिका में छपा (भाग ११, पृ० २८५)।

इन्द्रवर्मन् के राज्य-काल का हमें अधिक ज्ञान नहीं प्राप्त हो सका है। एक लेख में लिखा है कि इसके अनुशासनों का पालन चीन, चम्पा और यवद्वीप में होता है।[1] चम्पा के विषय में तो कहना अनुचित नहीं है क्योंकि इन दोनों देशों के बीच में संघर्ष बराबर होता रहा है। जावा में यह अराजकता का समय था किन्तु इसका कम्बुज से कोई सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता है। चीन के विषय में यह सम्भव है कि दक्षिणी भाग के कुछ राज्य जो पहिले चीन का आधिपत्य स्वीकार कर चुके थे अब कम्बुज के आधीन हो गये हों। इनमें से एक उत्तरी यूनान में नान-चाओ की हिन्द थाई रियासत थी जो ७३० ई० में चीनी आधिपत्य से मुक्त हो चुकी थी।[2] इन्द्रवर्मन् ने १२ वर्ष तक राज्य किया और इसने कई मूर्तियों को स्वयं बनाया और मन्दिर तथा इन्द्रतड़ाक नामक एक बड़ा तालाब बनाया। इसके समय की बनी इमारतें अपने ढंग की थीं और उन्हें प्राचीन और विकसित ख्मेर कला के बीच युग में रक्खा गया है। मृत्यु के पश्चात् इसे 'ईश्वर-लोक' नाम से सम्बोधित किया गया। इन्द्रवर्मन् का राज्य उत्तर में छोडोक जहाँ पर उसने एक शिवविमान नोम-वयांग के पवित्र मन्दिर में दिया था,[3] से लेकर उत्तर-पश्चिम में यूनान तक फैला था जहाँ

१—प्रसत कन्डोल लेख :

चीनचम्पायवद्वीप भूमदुत्तुंगगस्तके।
यस्याज्ञा मालतीमालानिर्म्मला चुम्बलायते ।। श्लोक २० ।।

२—मजुमदार : कम्बुज देश, पृ० १०१।

३—बार्थ और बर्गेन : कम्बुज लेख, पृ० ३१३; कोड: हिन्दू राष्ट्र, पृ० १८६।

८८६ ई० का एक बौद्ध लेख मिला है।[१]

यशोवर्मन्—इन्द्रवर्मन् का पुत्र यशोवर्मन् शक संवत् ८११[२]–८८९ ई० में सिंहासन पर बैठा और इसका अन्तिम लेख शक संवत् ८३२[३]–९१० ई० का मिला है, जिससे प्रतीत होता है कि इसने कोई २१ वर्ष तक राज्य किया जो शान्ति का समय था। इसके लेखों में कोई ऐतिहासिक घटना का उल्लेख नहीं है। लोले के लेख[४] में लिखा है कि इसके राज्य की सीमा उत्तर में चीन तक थी (चीन-सन्धि-पयोधिम्यां मितोर्वी येन पालिता)। यशोवर्मन् के पिता इन्द्रवर्मन् के समय में उत्तर-पूर्व के राज्य जो पहिले चीन का आधिपत्य स्वीकार कर चुके थे अब कम्बुज के आधीन थे। यशोवर्मन् के समय में राज्य सीमा में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ। एक दूसरे लेख में लिखा है कि इसके समय में एक सामुद्रिक बेड़ा बाहर भेजा गया।[५] यह नहीं कहा जा सकता कि यह किस ओर भेजा गया। हो सकता है कि यशोवर्मन् ने जावा की परिस्थिति देखकर वहाँ बेड़ा भेजा हो। इसके अतिरिक्त उसने कई राजाओं को पुनः उनका राज्य दिलाया और उनकी लड़कियों से विवाह किया। इनकी जानकारी प्राप्त करना कठिन है। इसका राज्य चीन की दक्षिणी सीमा से लेकर दक्षिण में समुद्र-तट

१—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २२, पृ० ६३।

२—प्रा-बात लेख : मजुमदार, कम्बुज लेख न० ६०, पृ० ७४ से।

३—फीमनाक द्वार लेख; मजुमदार : कम्बुज लेख नं० ७४, पृ० १६५।

४—मजुमदार : कम्बुज लेख न० ६१, पृ० ८१ से।

५—नौकार्ब्बुदं येन जयाय याने प्रसारितं सीतसितं समान्तात्। यही न० ६२, पृ० ९२, श्लोक ४६।

और पूर्व में चम्पा की सीमा से लेकर पश्चिम में मीनम और साल्वीन नदी तक फैला हुआ था।[१]

यशोवर्मन् के लेखों से हमें उसकी विद्वत्ता का भी पता चलता है। इसके पिता ने वाम शिव नामक शिवकैवल्य के पौत्र को इसकी शिक्षा-दीक्षा के लिये रक्खा था। एक लेख से पता चलता है कि इसने 'महाभाष्य' पर एक टीका लिखी।[२] इसी श्लोक में नागेन्द्र का भी उल्लेख है। इसके धार्मिक विचार उच्च थे और शैव होते हुए भी यह वैष्णव और बौद्ध धर्मों का आदर करता था।[३] उच्च शिक्षा के लिये इसने शिवपुर

१—यशोवर्मन् के भतीजे राजेन्द्रवर्मन् के एक लेख में इस सम्राट् के राज्य की सीमा निर्धारित की गई है। इसका राज्य सूक्ष्मकाम्रात (वरमनी का किनारा) से स्याम की खाड़ी, चम्पा तथा चीन की सीमा तक था (आसूक्ष्मकाम्रातपयोधिचीन चम्पादि देशाद्धरणेरधीशः बकसे-चमक्रों लेख, श्लोक २७; मजुमदार : कम्बुज लेख, पृ० १६०)

२—नागेन्द्रवक्त्रविष दुष्टतयेव भाष्यं मोहप्रदं
प्रतिपदंकिलं शब्दिकानाम्।
व्याख्यामृतेत वदनेन्दु विनिर्गतेन
यस्य प्रबोधकरमेव पुनः प्रयुक्तम्॥

(देखिये : इसी का पूर्वी बारे लेख—मजुमदार : कम्बुज लेख, पृ० ९६ श्लोक ९४)

३—इसने भिन्न-भिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के लिये आश्रमों का निर्माण कराया। ब्राह्मण आश्रम शैव, पाशुपत तथा तपस्विनों के लिये था, विष्णु आश्रम पञ्चरात्र, भागवत तथा सात्वतों के लिये निर्माणित किया गया; और सौगताश्रम बौद्धों के लिये था। (देखिये प्राह-बात तथा लोले के लेख)। इन आश्रमों के भग्नावशेषों का पता लगाने का प्रयास किया गया है। (देखिये सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३२, पृ० ८५ : तथा

में एक विद्यालय खुलवाया और वहाँ के प्रधान अध्यापक ने शैव धर्म के विकास में भाग लिया। इसके समय में सैंकड़ों धार्मिक आश्रमों का निर्माण हुआ और भारतीय संस्कृति और साहित्य का ज्ञान कम्बुज देश में बहुत बढ़ा-चढ़ा था। लेखों से यह प्रतीत होता है कि साहित्यिक क्षेत्र में बड़ी प्रगति हुई थी, कई संस्कृत ग्रन्थों से उद्धृत श्लोक भी इन लेखों में मिले हैं। इस विषय पर हम अधिक विचार साहित्य के अध्याय में करेंगे। इस के सयय में तड़ाक, मन्दिर, आश्रम इत्यादि का निर्माण हुआ और यशोधरपुर नामक नगर की नींव रक्खी गई जो १५ शताब्दी तक रहा। कोड के मतानुसार इसका देहान्त ९०० ई० में हुआ और मृत्यु के पश्चात् इसका 'परम-शैवलोक' नाम पड़ा।

हर्षवर्मन् प्रथम तथा ईशानवर्मन् द्वितीय—यशोवर्मन् की मृत्यु के पश्चात् उसके दो पुत्र क्रमशः गद्दी पर बैठे। हर्षवर्मन् के विषय में कहा जाता है कि उसने ९१२ ई० में फ़ूनान की प्राचीन राजधानी में एक दान दिया[1] और नाम-बकैंग की पहाड़ी के नीचे एक मन्दिर बनवाया।[2] इसने निःसन्देह ९२२ ई० तक राज्य किया[3] और मृत्यु के पश्चात् इसे रुद्रलोक नाम से सम्बोधित किया गया। ईशानवर्मन् द्वितीय, जिसे परमरुद्रलोक

पेरिस की एशियाटिक सभा की पत्रिका १९०८ (मार्च-अप्रैल पृ० २०३)।

१—बार्थ तथा बेरगेन—कम्बुज लेख; पृ० ५५१, सुदूरपूर्व पत्रिका भाग २८ पृ० १२७-२८।

२—देखिये बकसे—चम्क्रांग लेख—ऊपर संकेत दिया है। पृ० ५००।

३—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३१, पृ० १७।

नाम दिया गया के विषय में भी कुछ ज्ञान प्राप्त नहीं है। कोड का कहना है कि यह ९२५ ई०[1] में राज्य कर रहा था, जैसा कि तुम्रोल-कुल के एक लेख से पता चलता है जिसमें शक संवत् ८४७-९२५ ई० में ईशानवर्मन् द्वितीय को दिये गये एक मानपत्र का उल्लेख है। इधर शक, संवत् ८४३-९२१[2] ई० का एक लेख मिला है जिसमें नृपति जयवर्मन् (चतुर्थ) के दान का उल्लेख है जो उसने त्रिभुवनेश्वर स्वामी को दिया था। यह तिथि ईशानवर्मन् द्वितीय के समय में पड़ती है। अतः यह प्रतीत होता है कि ईशानवर्मन् के समय में जयवर्मन् यशोधरपुर से बाहर चला गया और उसने एक भाग पर अधिकार करके वहाँ स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। ईशानवर्मन् की मृत्यु कदाचित् ९२८[3] ई० में हुई और उसके बाद जयवर्मन् सम्पूर्ण कम्बुज देश का शासक हो गया। हर्षवर्मन् और ईशानवर्मन् के मरणानन्तर सम्बोधित नाम क्रमशः परम और रुद्रलोक थे।

जयवर्मन् चतुर्थ—खो-खेर में मिले शक संवत् ८३४-९२१ ई० के एक लेख से पता चलता है कि जयवर्मन् इस स्थान पर ९२१ ई० में राज्य कर रहा था। इसके अतिरिक्त

१—कोड : 'ईशानवर्मन् द्वितीय की एक तिथि'—बृहत्तर भारत पत्रिका, भाग ३, १९३६ पृ० ६५।

२—कोड : 'खो खेर की तिथि' सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३१, पृ० १२, मजुमदार, कम्बुज लेख, नं० ८०, पृ० १६५।

३—देखिये जयवर्मन् चतुर्थ का प्रसंत निग्रं-ख मों का लेख जिसमें इस सम्राट् के राज्याभिषेक की तिथि शक सं० ८५०-९२८ दी है। मजुमदार : कम्बुज लेख, नं० ८३, पृ० १६७; कोड : कम्बुज लेख, भाग २, पृ० ३२ : सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३१, पृ० १७।

इसका एक और लेख ६२२[१] ई० का मिला है। इधर तुओल-पाई के शक सं० ८४४–६२२ ई० के लेख में कोड के मतानुसार हर्षवर्मन् और आमोनियेर के अनुसार ईशानवर्मन् का उल्लेख है। वाटी प्रान्त में मिले शक सं० ८५०–६२८ ई० के लेख[२] से जयवर्मन् चतुर्थ के राज्याभिषेक की तिथि निर्धारित होती है। इस लेख के अनुसार यह इसी वर्ष गद्दी पर बैठा। इन लेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जयवर्मन् अपने भतीजों के राज्य-काल में ही स्वतन्त्र हो गया था पर वह कम्बुज देश का स्वामी इन दोनों की मृत्यु के पश्चात् ६२८ ई० में हुआ। इसका अन्तिम लेख शक सं० ८५६–६३७ ई० का है जो खो-खेर में ८५१, ८५२ तथा ८५४ के लेखों के साथ मिला।[३] यह स्थान अंगकोर से कोई ५० मील उत्तर-पूर्व में है। एक और लेख[४] में यशोवर्मन् हर्षवर्मन् प्रथम, ईशानवर्मन् तथा जयवर्मन् चतुर्थ की प्रशंसा की गई है। इससे प्रतीत होता है कि जयवर्मन् ने यशोवर्मन् के वंश से अपना सम्बन्ध स्थापित रखा।

हर्षवर्मन् द्वितीय—जयवर्मन के पश्चात् उसका पुत्र हर्षवर्मन् द्वितीय गद्दी पर बैठा। इसके समय का एक शक सं० ८६४-६४२ ई० का लेख[५] मिलता है जिसमें लिखा है कि इस तिथि में उसका अभिषेक हुआ।

१—कोन आन मन्दिर लेख : मजुमदार ; कम्बुज लेख, नं० ८१, पृ० १६६ : सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३३, पृ० १६।

२—ऊपर उल्लेख हो चुका है।

३—मजुमदार : कम्बुज लेख, नं० ८४, पृ० १६७।

४—प्रसत-अन्दो लेख, मजुमदार : कम्बुज लेख, नं० ८६, पृ० १७१।

५—वात-कडाई लेख : यही पुस्तक, नं० ८८, पृ० १७८।

किन्तु उसका एक और लेख[१] एक वर्ष पहिले का भी मिला है। अतः यह विचार किया जाता है कि वास्तव में जयवर्मन् चतुर्थ ने ९४१ ई० तक राज्य किया और उसके बाद उसका पुत्र हर्षवर्मन् द्वितीय सिंहासन पर बैठा। इसने केवल दो वर्ष राज्य किया। इसके बाद इसका मौसेरा भाई राजेन्द्रवर्मन् सिंहासनारूढ़ हुआ। किंवदन्तियों के अनुसार हर्षवर्मन् को भागना पड़ा। कदाचित् दोनों भाइयों के बीच में युद्ध हुआ होगा। राजेन्द्रवर्मन् ने पुनः यशोधरपुर (अंगकोर) को अपनी राजधानी बनाया।

राजेन्द्रवर्मन्—कम्बुज देश का यह एक प्रतापी सम्राट् हुआ है। यह सं० ८६६[२]–९४४ ई० में सिंहासन पर बैठा। राजेन्द्रवर्मन् के शक सं० ८८३ के प्रे-रूप के लेख से पता चलता है कि यशोवर्मन् की दो बहिनें थीं—जयदेवी जिसका विवाह जयवर्मन् चतुर्थ के साथ हुआ था, और महेन्द्रदेवी जो महेन्द्रवर्मन् की स्त्री थी और उनका पुत्र राजेन्द्रवर्मन् था। जयदेवी का पुत्र हर्षवर्मन् द्वितीय था। इस प्रकार इन दोनों मौसेरे भाइयों के बीच में वैमनस्य होना स्वाभाविक था किन्तु अपने राज्यकाल के अन्त समय के लेख में उसने अपनी मौसी और भाई के पुण्य के हेतु दो मूर्तियों की स्थापना कराई। यशोवर्मन् के शक सं० ८७४–९५२ ई० के मेम-बोन के लेख[३] में इसके

१—नोम-व्यांग लेख मजुमदार : कम्बुज लेख नं० ८७, पृ० १७५।

२—अपन-संबोत लेख : यही पुस्तक, नं० ८९, पृ० १७८। इस तिथि की पुष्टि प्रे-रूप के लेख से भी होती है। देखिये, यही पुस्तक पृ० २३३।

३—मजुमदार : कम्बुज लेख, नं० ९३, पृ० १९३; सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३५, पृ० ३०९।

वंश का उल्लेख है। इसने कौण्डिन्य नामक ब्राह्मण को अपना पूर्वज लिखा है जो सोमा राज्ञी से विवाह कर फ़ूनान का राजा हो गया था। इसी वंश में अनिन्दितपुर का राजा बालादित्य हुआ। उसकी भगिनी सरस्वती ने विश्वरूप नामक ब्राह्मण से विवाह किया और उनकी पुत्री महेन्द्रदेवी ने महेन्द्रवर्मन् से विवाह किया। इनका पुत्र राजेन्द्रवर्मन् था। इस लेख में यशोवर्मन् का कहीं उल्लेख नहीं है। प्रे-रूप के लेख ने यह समस्या हल कर दी और यह निश्चित हो गया कि राजेन्द्रवर्मन् जयवर्मन् चतुर्थ का पुत्र न था वरन् भांजा था। राजेन्द्रवर्मन् के बहुत से लेख मिले हैं किन्तु इनमें से किसी में भी इसके राज्य-काल की घटनाओं का उल्लेख नहीं है। केवल इतना पता चलता है कि इसने विरोधी राजाओं को हराया और मुख्यतया चम्पा के ऊपर आक्रमण किया।[१] यह कदाचित् ९४५-४६ ई० में हुआ होगा। चम्पा के एक लेख[२] से पता चलता

१—देखिये : बात-चुम, प्रे-रूप तथा नोम त्राप लेख। प्रथम लेख में लिखा है कि राजेन्द्रवर्मन् ने यशोधरपुरी को पुनः बसाया जो उजड़ गई थी और उसने चम्पा तथा अन्य विदेशी शक्तियों पर विजय पाई। (चम्पादिपरराष्ट्राणां दग्धा कालनलाकृतिः श्लोक ४५) : प्रे-रूप के लेख में भी यशोधरपुर को पुनः राजधानी बनाने तथा चम के ऊपर विजय का उल्लेख है। (चम्पाधिपं बाहुबलेन जित्वा, श्लोक २७२)

२—देखिये : जय इन्द्रवर्मन् का ८८७ शक सं० का पो-नगर लेख। इस लेख के अनुसार ८८७ शक ई० ९६५ में सम्राट् श्री जय इन्द्रवर्मन् ने भगवती की एक मूर्ति इस स्वर्ण-मूर्ति के स्थान पर स्थापित की जो कम्बुज लोग उठा ले गये थे। (हैमीम् यत्प्रतिमां पूर्व्वं येन दुष्पापतेजसा, न्यस्तां लोमादिसंक्रान्ता मूता उद्धृत्य काम्बुजाः) मजुमदार : चम्पा, भाग ३, नं० ४७, पृ० १४३।

है कि ख्मेर (कम्बुज) प्रो-नगर मन्दिर से एक सोने की मूर्ति उठा ले गये थे और उसके स्थान पर चम्पा के राजा ने दूसरी मूर्ति स्थापित की। राजेन्द्रवर्मन् ने और दिशाओं में भी हाथ-पैर फैलाये। इसने यशोधरपुर को पुनः अपनी राजधानी बनाया। इसकी मृत्यु ९६८ ई० में हुई और मृत्यूपरान्त इसे 'शिवलोक' नाम मिला।

जयवर्मन् पंचम—कोड के मतानुसार जयवर्मन् शक संवत् ८९०-९६८ ई० में सिंहासन पर बैठा किन्तु उसका अभिषेक एक वर्ष बाद हुआ। डा० मजुमदार का कहना है[१] कि राजेन्द्रवर्मन् के समय में ही यह उत्तराधिकारी घोषित कर दिया गया था पर एक वर्ष पश्चात् पिता के मरने पर उसका अभिषेक हुआ। जयवर्मन् के समय के ८९० तिथि के कई लेख[२] मिलते हैं किन्तु कोक रोसी के लेख में लिखा है कि एक सम्राट् ९१ में गद्दी पर बैठा। पहले इस राजा की समानता जयवर्मन् तृतीय से की जाती थी और आमोनिये[३] ने इस लेख की तिथि ७९१ निर्धारित की, किन्तु अब कोड के मतानुसार[४] इस लेख की तिथि को ८९१ मान लिया गया है और यह जयवर्मन् पंचम के समय का था। जयवर्मन् के राज्य काल की कोई ऐतिहासिक धटना का उल्लेख नहीं है किन्तु

१—कम्बुज देश, पृ० १००; सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २८, पृ० ११५।

२—वान्ते श्रे, तुओल कुल, अंगकोर वाट, तथा नोम वासेन तथा वसेक के लेख—मजुमदार: कम्बुज लेख, क्रमशः नं० १०२, १०४, १०५; १०६ तथा १०९ अ०।

३—कम्बुज लेख, भाग १, पृ० ४२०-२३।

४—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २८, पृ० ११३।

कुछ लेखों से प्रतीत होता है कि इसके समय में बौद्ध धर्म को बड़ा प्रोत्साहन मिला। इस सम्राट् के दो लेख विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। प्रा—आइनकोसाई के लेख[१] में लिखा है कि राजेन्द्रवर्मन् के पूर्वज कम्बुज वंशज थे और वे अनिन्दितपुर निवासी थे। दूसरे भाग में उसकी कनिष्ठ भगिनी इन्द्रलक्ष्मी के दान का उल्लेख है। इसका विवाह दिवाकर भट्ट नामक ब्राह्मण से हुआ था जिसका निवास-स्थान भारत में कालिन्दी के तट पर था। इसकी पुष्टि तत्रु के लेख[२] से होती है जिसमें लिखा है कि दिवसकार (दिवाकर) भट्ट का निवास-स्थान कालिन्दी (यमुना) तट पर स्थित वह नगर था जहाँ श्रीकृष्ण ने अपनी बाल-लीला खेली थी। इससे यह प्रत्यक्ष है कि उस समय में भारतवर्ष और कम्बुज देश में पारस्परिक समागम था और यहाँ से गये आगन्तुकों का विशेष रूप से आदर होता था। प्रो-आइनकोसाई तथा उसी से उद्धृत अन्य लेखोंमें जयवर्मन् की चम्पा तथा अन्य दिशाओं में दिग्विजयों का उल्लेख है पर इसकी पुष्टि नहीं हो सकी है। जयवर्मन् ने अपने नाम पर एक नवीन नगर की स्थापना की और कई तड़ाग बनवाये। इसके समय में राज्य-धर्म शैव मत था पर बौद्ध धर्म में योगाचार्यों[३] का प्रभाव बढ़ रहा था जिसमें कीर्ति पण्डित नामक व्यक्ति का बड़ा हाथ था। जयवर्मन् की मृत्यु १००१ ई० में

१—मजुमदार : कम्बुज लेख, नं० १११, पृ० २८५ से। अमोनिये : कम्बुज, भाग २, पृ० ४०४। कोड : कम्बुज लेख, भाग ४, पृ० १०८।

२—मजुमदार : कम्बुज लेख, नं० ११२, पृ० २६२ से।

३—देखिये : नौम-बन्ते नान लेख तथा प्रसत कोक लेख—मजुमदार : कम्बुज लेख क्रमशः नं० ११३, ११५। कोड : कम्बुज राष्ट्र, पृ० २०१।

हुई और मृत्यूपरान्त इसका नाम 'परमवीरलोक' पड़ा। इसके पश्चात् इसके भतीजे उदितवर्मन् प्रथम ने कुछ महीने राज्य किया।[१]

इस काल का विशेष महत्त्व—इन्द्रवर्मन् से जयवर्मन् पंचम तक का लगभग एक सौ वर्ष से अधिक का काल कम्बुज देश के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस समय में चीन में अराजकता फैली हुई थी। इसी कारण से राजनैतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में यहाँ बड़ी प्रगति हुई। इसका प्रभाव निकटवर्ती राज्यों पर भी पड़ा। राजनैतिक क्षेत्र में कम्बुज राज्य की सीमायें विस्तृत हो गई थीं। उत्तर में चीन के आधीन टोंकिन तथा अन्य आधीन राज्यों पर अधिकार करके कम्बुज की सीमा चीन देश की सीमा में मिल गई थी।[२] इन्द्रवर्मन् के लेख में तो चीन तक पर कम्बुज का अधिकार बताते हैं पर यह बात निर्मूल है। इससे चीन के अधीन कोई राज्य का संकेत होगा। पश्चिम में कम्बुज राज्य स्याम तक पहुँच गया था और मीननम की घाटी में स्थित राज्य इस देश का आधिपत्य स्वीकार कर चुके थे। दक्षिण में मलय देश के उत्तरी भाग पर कम्बुज का अधिकार था। चम्पा देश स्वतंत्र था पर इसका कम्बुज देश के साथ बराबर द्वन्द्व चलता रहा जिसमें कम्बुज राजाओं का पल्ला भारी था। सांस्कृतिक क्षेत्र में इस युग में बड़ी प्रगति हुई।

१—कोड : 'उदयादित्यवर्मन् का एक लेख', सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ११, पृ० ४००।

२—इस विषय में विशेष अध्ययन के लिये 'अध्ययन एशियाटिक' भाग २ पृ० ७९ देखिये। डा० मजुमदार ने इसी से उद्धृत किया है। (कम्बुज देश, पृ० १०१)।

वर्ण-व्यवस्था का कम्बुज देश में पूर्णतया स्थापित होना, ब्राह्मणों का आधिपत्य तथा राजनीति में पूर्णतया भाग लेना, मुख्यतया शैव तथा बौद्ध धर्म का उत्कर्ष तथा साहित्यिक क्षेत्र में प्रगति, कला इत्यादि विषयों का क्रमशः आगे विवरण किया जायगा। यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि इस काल में कम्बुज राज्य बहुत विस्तृत हुआ और देश ने बड़ी उन्नति की।

अध्याय ७

बृहत् कम्बुज राज्य

कम्बुज देश के इतिहास में राज्य प्राप्ति के लिए युद्ध होना स्वाभाविक था क्योंकि पिता की मृत्यु के बाद उसका पुत्र ही नहीं वरन् भगिनी पुत्र भी अधिकारी बन सकता था। अतः जयवर्मन् पंचम की मृत्यु के पश्चात् गृह-युद्ध आरम्भ हो गया। जयवर्मन् का उत्तराधिकारी उदयादित्यवर्मन् प्रथम था जो शक सं० ९२३–१००१ ई० में राज्याधिकारी हुआ। इसके दो लेख[१] जो म्लू-प्राई और को-केर जिलों में मिले हैं, एक ही तिथि के हैं। म्लू-प्राई के लेख की वंशावली के अनुसार उदयादित्यवर्मन् और उसके ज्येष्ठ भ्राता नरपतिवर्मन् की माँ जयवर्मन् पंचम की रानी की बहिन थी। जयवर्मन् के शक सं०

१—प्रसत खन लेख—सुदूरपूर्व पत्रिका भाग ११, पृ० ४००: मजुमदार कम्बुज लेख नं० ११७, पृ० ३०३: तथा इसी सम्राट् का प्रसत थोन लेख: कोड: कम्बुज लेख नं० ५०: मजुमदार: कम्बुज ११८, पृ० ३०८। पहिले लेख में निम्नलिखित वंशावली दी गई है।
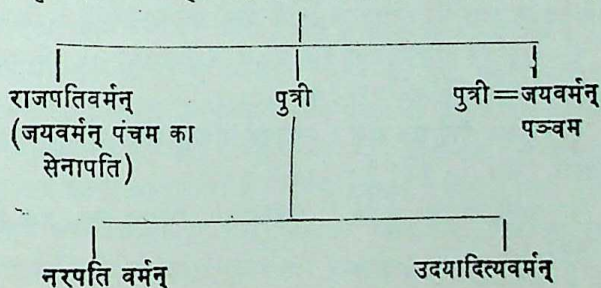
९०१ के लेख[१] में इन दोनों भाइयों के दान का उल्लेख है। इससे यह प्रतीत होता है कि यह दोनों भाई जयवर्मन् के समय में राज्य सभा में थे और समय पाने पर इन्होंने राज्य पर अधिकार कर लिया। नरपतिवर्मन् अपने छोटे भाई का सेनापति था और कदाचित् इसी ने राज्य पर अधिकार कर लिया होगा पर अपने छोटे भाई को सिंहासन पर बैठाया। इनका मामा राजपतिवर्मन् जयवर्मन् का सेनाध्यक्ष था इसलिये इनको सफलता प्राप्त हो गई। यह दोनों लेख अंगकोर से दूर उत्तर पूर्व में मिले हैं। इधर उसी तिथि का सूर्यवर्मन् प्रथम का एक लेख[२] कोमपों-स्व प्रान्त में मिला है। इसी प्रान्त में मिले एक अन्य लेख[३] से इसके राज्याभिषेक की तिथि शक सं० ९२४ निर्धारित होती है। उदयादित्यवर्मन् प्रथम के विषय में कुछ अन्य जानकारी प्राप्त नहीं है, किन्तु सूर्यवर्मन् प्रथम का एक प्रतिद्वन्द्वी जयवर्मन् था जिसके उसी काल के कई लेख मिले हैं। कोमपौं-स्वे प्रान्त में जयवीरवर्मन् का शक सं० ९२५ का एक लेख[४] मिला है। इसके अनुसार ९२५ में सम्राट् जयवीरवर्मन् जयेन्द्रनगरी में थे। इसी सम्राट् जयवीर-

---

१—प्रसत-कार लेख : अमोनिये : कम्बुज—भाग २, पृ० ३८६ : मजुमदार : कम्बुज लेख नं० ११४, पृ० २९९। इस ख्मेर लेख में श्री राजपतिवर्मन् तथा श्री नरपति वर्मन् के दानों का उल्लेख है।

२—सुदूरपूर्व पत्रिका भाग ३४, पृ० ४२२ से : तथा ३५ पृ० ४९३ : मजुमदार कम्बुज लेख नं० १२०, पृ० ३१०।

३—देखिये प्राह-खन लेख : सुदूरपूर्व पत्रिका भाग ४ पृ० ६७२ : मजुमदार : लेख नं० १४९ पृ० ३५९।

४—अमोनिये पृ० ३७९ : मजुमदार : कम्बुज लेख नं० १२२ पृ० ३११।

वर्मन् का एक और लेख[1] बट्टमवंग प्रान्त में मिला है जो अंगकोर से दक्षिण-पश्चिम में है। इससे यह प्रतीत होता है कि जयवीरवर्मन् का राज्य मध्य कम्बुज देश में प्रसिद्ध झील के दोनों ओर था। शक सं० ९२८ के एक लेख[2] से पता चलता है कि कोमपों-स्वे का प्रान्त इसके अधिकार में था। इसके पश्चात् का इसका कोई लेख नहीं मिलता है। इस काल के सूर्यवर्मन् के लेख[3] उत्तर-पूर्व में बसक तथा दक्षिण-पूर्व में बरे और कान-प्रे प्रान्त में मिलते हैं। इन लेखों के प्राप्त स्थान से यह प्रतीत होता है कि जयवीरवर्मन् और सूर्यवर्मन् प्रथम समकालीन थे और पहिले नृप का अंगकोर तथा प्रसिद्ध झील के निकटवर्ती प्रान्तों पर अधिकार था, तथा दूसरे का उत्तर-पूर्व के प्रान्तों पर राज्य था। इन दोनों में आधिपत्य के लिए युद्ध होना स्वाभाविक था। सूर्यवर्मन् के एक लेख[4] से

१—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३१, पृ० ६२०; मजुमदार : कम्बुज लेख नं० १२१, पृ० ३१०।

२—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २८, पृ० ५८; मजुमदार : कम्बुज लेख नं० १३१, पृ० ३३१।

३—देखिये : सूर्यवर्मन् के तेप-प्रनाम के ९२७ तथा ९२८ के तीन लेख (मजुमदार नं० १३०), वट-फु का ९२८ का लेख।

४—मजुमदार : कम्बुज देश, पृ० १५६ (नं० १२९); सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३४, पृ० ४२७। कोड के कथनानुसार सूर्यवर्मन् का अगकोर पर अधिकार अधिक से अधिक १०१० ई० तक रखना चाहिये, यदि १००२ ई० में हम उदयादित्य वर्मन् प्रथम की मृत्यु अथवा सिंहासनच्युत निर्धारित करें। (हिन्दू राष्ट्र, पृ० २२९) : प्राह–खन लेख में एक ऐतिहासिक घटना का उल्लेख है। इसके अनुसार सम्राट् ने किसी राजा को उसके अन्य सहायक नृप सहित हराकर राज्य प्राप्त किया था (रणस्थो राजसंकीर्णाद्राज्ञो राज्यं जहार यः) (श्लोक ७। कम्बुज लेख, पृ० ३६१)

पता चलता है कि उसने ६ वर्ष तक युद्ध करने के बाद अपना प्रभुत्व स्थापित किया। इधर शक सं० ६२६ के बाद जयवीर-वर्मन् के लेख नहीं मिलते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि सूर्यवर्मन् प्रथम ने सम्पूर्ण कम्बुज देश पर ६३३ तक अधिकार कर लिया।

सूर्यवर्मन् प्रथम (१००२–१०४६ ई०)—यह कम्बुज देश का बड़ा प्रतापी सम्राट् हो गया है। इसके उत्पत्ति-स्थान के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं है। एक लेख[1] से पता चलता है कि इसका सम्बन्ध इन्द्रवर्मन् से था। कोड[2] का मत है कि यह मलय देश का रहने वाला था पर लेखों के

१—वत-थिपेदि लेख, मजुमदार : कम्बुज लेख, नं० १२६, पृ० ३२२ (कम्बुजेन्द्रान्वयव्योमद्युमरणेः श्रीन्द्रवर्मणः श्लोक ३)।

२—कोड : हिन्दू राष्ट्र, पृ० २३२। इस फ्रांसीसी विद्वान् ने मीनाम की घाटी में ख्मेर संस्कृति की प्रगति पर प्रकाश डालते हुए चिग्रंग मे द्वारा लिखित तीन पालि ग्रन्थों का आश्रय लिया। वे क्रमशः 'चाम देवीवंस' (जो कदाचित् १५वीं शताब्दी के आरम्भ में लिखा गया है; 'जिनकालमालिनी' (१५१६ ई० तक लिखा गया था); और 'मूल-सासन'—(देखिये 'पश्चिमी लाम्रोस के राजनैतिक तथा धार्मिक इतिहास सम्बन्धी पत्र', सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २५, पृ० १५१)। इनके आधार पर कम्बुज का राजा, जिसने हरिपुञ्जय पर आक्रमण किया था, सूर्य-वर्मन् था। इसके मतानुसार 'केलन्' नामक सूर्यवर्मन् की उपाधि मलय शब्द 'त्वन्' से ली गई जिसका अर्थ 'सरदार' है। इस विषय में डा० मजुमदार की धारणा ठीक प्रतीत होती है। यह पहिले ही कहा जा चुका है कि सूर्यवर्मन् के लेख उत्तर तथा पूर्व कम्बुज देश में प्राप्त हुए हैं—पश्चिम प्रान्त में उदयादित्यवर्मन् तथा जयवीरवर्मन् ने राज्य किया; अतः सूर्यवर्मन् द्वारा हरिपुञ्जय पर आक्रमण की सम्भावना तभी हो सकती है जब उसने पश्चिमी प्रान्त पर भी अधिकार कर लिया हो।

प्राप्त स्थानों से ज्ञात होता है कि पहिले यह उत्तर-पूर्व कम्बुज देश में राज्य करता था और ९ वर्ष तक युद्ध करने के पश्चात् इसे पूर्णतया सफलता प्राप्त हुई। यद्यपि यह शक ९२४-१००२ ई० में सिंहासन पर बैठा पर वास्तव में इसे ९३३-१०११ ई० में कम्बुज का सम्राट् समझना चाहिये। यह सत्य है कि इसका कम्बुज राज्य वंश से कोई विशेष सम्बन्ध न था, पर यह प्रतीत होता है कि इसने पहिले उदयादित्य प्रथम का राज्य जीत लिया और फिर जयवीरवर्मन् को हराकर सम्पूर्ण कम्बुज देश का शासक हो गया। इसके लेखों में एक विशेष बात मिलती है। गृह-युद्ध के पश्चात् यह अनिवार्य हो गया कि पदाधिकारी सम्राट् के प्रति स्वामि-भक्ति की शपथ ले। ऐसे दस लेख १०११ ई० के मिले हैं जिनमें से आठ अंगकोर थाम प्रासाद के गोपुरम् के स्तम्भों पर लिखे हैं।[१] सूर्यवर्मन् की स्याम तथा दक्षिण ब्रह्म देश के मों राज्य की विजय का उल्लेख कोड के अनुसार[२] 'चामदेवी वंस', 'जिनकालमालिनी' तथा 'मूलसासन' नामक पालि ग्रन्थों में मिलता है। यह ग्रन्थ १५-१६वीं शताब्दी के हैं और इसलिए सूर्यवर्मन् के सम्बन्ध में उनका ऐतिहासिक महत्त्व कम है। हाँ, मीनाम और मेकाँग की घाटी में मिले कुछ लेख तथा पुरातत्त्व भग्नावशेष ख्मेर प्रभाव के साक्षी हैं। एक लेख से पता चलता है कि लवो के किनारे-किनारे भिन्न बौद्ध धर्मावलम्बी तथा ब्राह्मण योगी रहते

१—आमोनिये—कम्बुज, भाग ३, पृ० १३९; कोड : सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग १३, पृ० ११; मजुमदार : कम्बुज लेख, नं० १३६, पृ० ३४१।

२—कोड : स्याम के लेख—भाग २, पृ० २१-३१।

थे। एक अन्य लेख से वैष्णव धर्मावलम्बियों का अस्तित्व प्रतीत होता है।[१] बौद्ध धर्म का उत्कर्ष इस बात का प्रमाण है कि सूर्यवर्मन् का द्वारावती पर अधिकार रहा होगा। सूर्यवर्मन् स्वयं बड़ा विद्वान था और वह भाष्य, काव्य, दर्शन तथा धर्मशास्त्रों का ज्ञाता था।[२] उसकी बौद्ध धर्म की ओर विशेष रुचि थी क्योंकि मृत्यु के पश्चात् उसका नाम 'निर्वाण-पद' हुआ, किन्तु उसने शैव और वैष्णव मन्दिर भी बनवाये और वर्ण-व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया। उसकी मृत्यु १०४९ ई० में हुई और उसके बाद उदयादित्यवर्मन् द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुआ।

उदयादित्यवर्मन् द्वितीय—सूर्यवर्मन् के साथ उदयादित्यवर्मन् का कोई सम्बन्ध न था। कदाचित् यह अनधिकृत रूप से सिंहासनारूढ़ हुआ और इसी कारण से इसके राज्य-काल में तीन विप्लव हुए। प्रा-नोक के लेख में[३] इनका उल्लेख है। संग्राम नामक सेनापति ने सम्राट् का साथ दिया और उसने इनको दबाया। पहिला विप्लव १०५१ ई० में अरविन्द-ह्रद की अध्यक्षता में दक्षिणी भाग में हुआ। संग्राम ने इसको दबा दिया, इसके बाद वह चम्पा की ओर भाग गया। दूसरे

१—हिन्दू राष्ट्र, पृ० २३२ : देखिये प्रसत त्रपान लेख—मजुमदार कम्बुज लेख, नं० १३१, पृ० ३३१।

२—भाष्यादिचरणा काव्यपाणिष् षट् दर्शनेन्द्रिया।
यन्मतिर्द्धर्म्म-शास्त्रादि मस्तकाजंगमायता ॥ प्रा-खन लेख, श्लोक ६
—मजुमदार : कम्बुज लेख, नं ४९, पृ० ३६१।

३—वार्थ तथा बेरगेन : कम्बुज लेख १४०; मजुमदार : कम्बुज लेख, नं० १५५, पृ० ३८५।

विप्लव में एक अन्य सेनापति कंवौ का हाथ था। यह उत्तर-पश्चिम दिशा में हुआ और आरम्भ में इसे सफलता भी मिली। अन्त में संग्राम स्वयं गया और उसने कंवौ का युद्ध में बध कर इस विप्लव को शान्त किया। १०६५ ई० में राज्य-लक्ष्मी विचलित हो गई थी। कंवौ का विप्लव तो उत्तर-पश्चिम में हुआ था, दूसरा कदाचित् पूर्व में स्लवत् के आधिपत्य में हुआ। इसमें उसके सहायक सिद्धिकार तथा सशान्तिभुवन थे। संग्राम ने इनको हराया और शत्रुओं को बाँध कर सम्राट् के सम्मुख ले गया। यह विप्लव १०६६ ई० तक शान्त हो गया होगा। इस सम्राट् के एक अन्य लेख में उस शिवलिंग की पुनः स्थापना का उल्लेख है जिसे कंवौ द्वारा क्षति पहुँची थी। इस लेख में उसके एक सम्बन्धी की चर्चा है जो मध्यदेश में प्रसिद्ध था।[१] इस मध्यदेश से भारतवर्ष का संकेत नहीं प्रतीत होता है। ९२८ के नौम-प्राह के लेख में[२] एक मालिन का नाम मध्यदेशा लिखा है। कदाचित् इस शब्द से कम्बुज के मध्य भाग का संकेत होगा। चम्पा के दो लेखों में जो क्रमशः १०५० और १०५६ ई० के सम्राट् जयपरमेश्वर के काल के हैं, ख्मेरों की पराजय और शम्भुपुर के पवित्र स्थानों के नष्ट करने का उल्लेख है।[३]

१—मजुमदार : कम्बुज लेख, नं० १५६, पृ० ३९८—
लिङ्ग सरामसचिवेन समध्यदेशं..................
तन्मध्यदेशविदितेप्युदयार्क्कवर्म्मभूपस्य बान्धववरे सजनं च ददात् ॥१॥

२—मजुमदार : कम्बुज लेख, नं० १३१, पृ० ६०७।

३—देखिये—जय परमेश्वर देव के शक सं ९७२ के पोल्कों तथा पो नगर लेख, और इसी सम्राट् का ९७८ शक सं० का माइसन का लेख,

डा० मजुमदार का कहना[१] है कि चम्पा के युवराज महा-सेनापति ने उदयादित्यवर्मन् द्वितीय को हराया होगा। इस युद्ध के कारण का पता नहीं है। उदयादित्यवर्मन् ज्योतिष, गणित, व्याकरण, धर्मशास्त्र तथा अन्य शास्त्रों में पारंगत था और जयेन्द्र पण्डित तथा शंकर पण्डित नामक इसके दो गुरु थे।[२] इस सम्राट् की मृत्यु के पश्चात् इसका कनिष्ठ भ्राता हर्षवर्मन् तृतीय सिंहासन पर बैठा।

हर्षवर्मन् तृतीय--इस सम्राट् के राज्य-काल के शक सं० ९९३-१०७१ ई० के एक लेख[३] से पता चलता है कि हर्षवर्मन् शक संवत् ९८७-१०६५ ई० में गद्दी पर बैठा, किन्तु शक संवत् ९८८ तथा ९८९ के दो लेख[४] उदयार्कवर्मन् के समय के मिले हैं जिसकी समानता उदयादित्यवर्मन् के साथ की जा सकती है। यदि इन दोनों को भिन्न भी मानें तो भी हर्षवर्मन् को १०६५ में नहीं रक्खा जा सकता है। अतः हर्षवर्मन् तृतीय

(मजुमदार, चम्पा भाग ३, नं० ५४, ५५, ५६)। माइसन के लेख में युवराज महासेनापति द्वारा कम्बुज की पराजय और शम्भुपुर के नष्ट होने का उल्लेख है।

१—कम्बुज देश—पृ० ११९।

२—देखिये : उदयादित्यवर्मन् का स्डोक-काक लेख (मजुमदार : कम्बुज, लेख न० १५२) : तथा हर्षवर्मन् तृतीय का लोनबेक लेख (यही पुस्तक न० १६०)।

३—प्रसत-श्रलो लेख—कोड : कम्बुज लेख, भाग १, पृ० २२१; मजुमदार : कम्बुज लेख न० १५९, पृ० ४१७।

४—देखिये प्राह-नोक तथा प्रसत-प्राह लेख जो क्रमशः ९८८ तथा ९८९ शक सं० के हैं और जिनका पहिले उल्लेख हो चुका है। (मजुमदार : कम्बुज लेख, न० १५५-१५६)।

का अभिषेक १०६७ ई० में ही रक्खा जा सकता है। इसके समय की मुख्य राजनैतिक घटनाओं का पता अन्य सूत्रों से चलता है। १०७६ ई० में चीनी सम्राट् ने अनाम के विरुद्ध एक सेना भेजी और सहायता के लिए उसने चम्पा और कम्बुज के राजाओं से प्रार्थना की। दोनों ने सेनाएँ भेजीं पर चीनी हार गये।[1] थोड़े समय बाद कम्बुज और चम्पा में भी युद्ध छिड़ गया। इसका उल्लेख चम लेखों[2] में मिलता है। चम्पा के राजा हरिवर्मन् ने कम्बुज की सेना को सोमेश्वर में हरा दिया और उसके सेनापति कुमार श्री नन्दवर्मदेव को पकड़ लिया। कदाचित् उसी समय चम्पा सम्राट् के भाई पांग, जो थोड़े समय बाद परमबोधिसत्व नाम से राजा हुआ, ने शम्भुपुर के प्रसिद्ध मन्दिरों को नष्ट कर दिया। यह घटना कदाचित् १०८० ई० में हुई होगी। इन कारणोंवश कम्बुज की राजनैतिक स्थिति गंभीर हो चली थी। हर्षवर्मन् ने १०८९ ई० तक राज्य किया पर इसी बीच में राज्य के एक भाग पर जयवर्मन् षष्ठ राज्य कर रहा था जिसका एक लेख[3] शक

१—मास्पेरो : अनाम तथा कम्बुज की ८वीं से १४वीं शताब्दी तक की सीमाएँ—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग १८ (३), पृ० ३३।

२—देखिये जयहरिवर्मन् प्रथम का माइसन का लेख—फिनो : सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ४, पृ० ९६३, न० २१; मजुमदार : चम्पा, भाग ३, न० ७२, पृ० १७८ से; तथा न० ७४, पृ० ८२ का वतो तवलाह लेख—यही न० ७५, पृ० १९२; और पो नगर का १०८२ का हरिवर्मन् प्रथम का लेख—यही न० ७६।

३—देखिये नोम वान लेख : आमेनिये—कम्बुज, पृ० १११; कोड : सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २९, पृ० २९९।

संवत् १००४–१०८२ ई० का नोमवान (कारत) में मिला। इससे यह ज्ञात होता है कि कम्बुज देश का उत्तरी तथा पूर्वी भाग जयवर्मन् के अधिकार में हो गया था। मृत्यु के उपरान्त इसका नाम सदाशिव पड़ा।

जयवर्मन षष्ठ–धरणीन्द्रवर्मन् प्रथम––जयवर्मन् के समय के दो लेख[१] मिले हैं। इनसे ज्ञात होता है कि यह राजा शक संवत् १००४-१०१८ में कम्बुज के उत्तरी प्रान्त में राज्य कर रहा था। इसकी वंशावली का उल्लेख सूर्यवर्मन् द्वितीय तथा जयवर्मन् सप्तम् के लेखों[२] में है। इनके अनुसार इस वंश का मूल स्थान महीधरपुर था और यह हिरण्यवर्मन् का कनिष्ठ पुत्र था। यह नहीं कहा जा सकता कि हिरण्यवर्मन् वास्तव में स्वतन्त्र था, यद्यपि लेखों में इसे नृप तथा महीपति कहा गया था, अथवा वह हर्षवर्मन् तृतीय के आधीन था। जयवर्मन् ने ११०७ ई० तक

१—नोम-वान तथा प्रसत—कोक पो लेख (मजुमदार : कम्बुज लेख न० १६१, पृ० ४२५ तथा न० १६२, पृ० ४२६) इन दोनों लेखों को कोड ने सुदूरपूर्व पत्रिका में क्रमशः भाग २६, पृ० २६६, में तथा भाग ३७, पृ० ४१३, में छापा। इनकी तिथि शक सं० १००४ तथा १०१८ है। इन दो के अतिरिक्त शक सं० १०२३ का एक लेख प्रा-नोम में मिला जिसमें जयवर्मन् का नाम उल्लिखित है। कदाचित् यह लेख इसी सम्राट् के समय का है।

२—नोम-रन तथा ता-प्रोम लेख। मजुमदार : कम्बुज लेख, क्रमशः न० १७५, १७७)
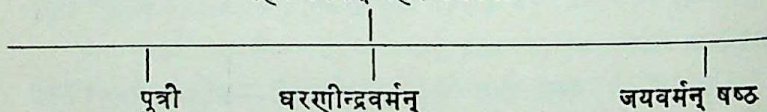
राज्य किया जैसा कि सूर्यवर्मन् द्वितीय के एक लेख[1] से पता चलता है जिसमें इसकी वंशावली लिखी है। जयवर्मन् की मृत्यु के पश्चात् 'परमकैवल्यपद' नाम से सम्बोधित किया गया। ११०७ ई० में इसके बड़े भाई धरणीन्द्रवर्मन् प्रथम का राज्याभिषेक हुआ। इसके काल के दो लेख[2] शक संवत् १०२९ और १०३१ के मिले हैं। नोमवयान के लेख से यह प्रत्यक्ष है कि इसके राज्य के अन्तर्गत दक्षिण छोडाक प्रान्त भी था। यद्यपि इन दोनों भाइयों के राज्य काल की घटनाओं का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है तथापि उनके वंशजों के लेखों में दिवाकर नामक ब्राह्मण का उल्लेख है जिसने जयवर्मन्, धरणीन्द्रवर्मन् तथा सूर्यवर्मन् के राज्याभिषेकों में भाग लिया था। उनके राज्य-काल में शैव और बौद्ध मन्दिरों का निर्माण हुआ। मृत्यु के पश्चात् धरणीन्द्रवर्मन् का 'परमनिष्कलपद' नामकरण हुआ।

सूर्यवर्मन् द्वितीय—यह धरणीन्द्रवर्मन् की बहिन का दौहित्र था और इसे हराकर १११३ ई० में सिंहासन पर बैठा। इसके लेखों[3] से यह प्रत्यक्ष है कि इसने कम्बुज के दोनों राज्यों

१—त्रपत दो का १०५१ शक सं० का लेख; मजुमदार : कम्बुज लेख, न० १७०, पृ० ४३३; कोड : कम्बुज लेख—भाग ३, पृ० १८०।

२—नोम वयान तथा प्रसत त्रौ लेख मजुमदार; कम्बुज लेख क्रमशः न० १६३ तथा १६४, पृ० ४२६, ४२७।

३—देखिये : नोम सण्डक का १०३८ शक सं० का लेख; नोम—प्रा विहार का १०४१ शक सं० का लेख; वट-फु का शक सं० १०६१ का लेख तथा नोम-रन लेख (मजुमदार : कम्बुज लेख क्रमशः न० १६७, १६८, १७१ तथा १७४)।

पर अधिकार कर लिया। इसका राज्याभिषेक भी दिवाकर पंडित ने किया था। इसी समय चम्पा में जयइन्द्रवर्मन् द्वितीय सम्राट् हुआ। लेखों से हमें ज्ञात होता है कि सूर्यवर्मन् द्वितीय ने अपनी विजयपताका दूर तक फैलाई, उसने हाथी पर बैठे-बैठे अपने प्रतिद्वन्द्वी राजा का सिर काट लिया। इससे कदाचित् हर्षवर्मन् तृतीय के कोई वंशज अथवा धरणीन्द्रवर्मन् के उत्तराधिकारी का संकेत होगा। वट-फु के लेख[1] से ज्ञात होता है कि उसने दोनों राज्यों को मिला दिया (श्री सूर्यवर्मदेवोऽधाद्राज्यन् द्वन्द्वसमासतः)। इस सम्राट् ने अपने राज्य की सीमा बढ़ाने के लिए अन्य देशों में दिग्विजय का प्रयास किया। बहुत से द्वीपों के राजाओं ने आत्मसमर्पण कर दिया पर अन्य देशों में वह स्वयं विजयपताका फहराने गया। इसके समय की राजनैतिक घटनाओं का चीन ग्रन्थों तथा कम्बुज के लेखों में उल्लेख है। सुंग वंश के इतिहास से पता चलता है कि कम्बुज और चीन के बीच राजनैतिक सम्बन्ध को इसने पुनः स्थापित किया और १११६--११२० ई० तक कई दूत चीन भेजे गये।[2] चीन के सम्राट् ने इसको उच्च उपाधियों से सुशोभित किया।

सूर्यवर्मन् की दिग्विजय कांक्षा—अनाम और चम्पा की ओर सूर्यवर्मन् की आँखें लगी हुई थीं। वह इन देशों को अपने अधिकार में करना चाहता था। ११२८ ई० में सर्वप्रथम वह अनाम की ओर बढ़ा। यह कहा जाता है कि अनाम में कम्बुज

१—मजुमदार : कम्बुज लेख, पृ० ४३८; कोड : सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २९, पृ० ३०३-४।

२—कोड : हिन्दू राष्ट्र, पृ० २७०।

और चम्पा के शत्रु शरण पा जाते थे, इसलिए सूर्यवर्मन् ने इस ओर धावा बोला[1] और उसके साथ चम्पा के सैनिक भी थे। इस सेना में २०,००० सैनिक थे। अनाम की पहाड़ियों को पार कर यह सेना को-गिआंग की घाटी में पहुँची। ७०० नौकाओं का बेड़ा भी सहायता के लिए भेजा गया था किन्तु वह समय पर नहीं पहुँच सका। अनाम के वीर सैनिकों ने कम्बुज की सेना को हरा दिया। ११३२ में एक दूसरा दल फिर भेजा गया। इसमें चम्पा के सैनिक थे। उन्होंने नघेअन पर आक्रमण किया पर वे हार गये। इसके बाद सन्धि हो गई। दो वर्ष बाद कम्बुज ने फिर आक्रमण किया। इस बार चम्पा की ओर से सहायता न मिली। वे फिर हारे। अत: अनाम को छोड़ कर अब चम्पा की ओर ध्यान गया। सूर्यवर्मन् के चम्पा पर आक्रमण का विवरण हमें यहीं के कुछ लेखों से लगता है। फ्रांसीसी विद्वान मासपेरो ने अनाम और चम्पा पर आक्रमणों का उल्लेख किया है।[2] उस समय में चम्पा का राजा जयहरिवर्मन् था और उसका राज्याभिषेक हुए थोड़ा ही समय बीता था। कम्बुज सेना शंकर की अध्यक्षता में भेजी गई और इसमें चम्पा के एक प्रान्त विजय के सैनिक भी थे जो कम्बुज के अधिकार में था। मैसोन के लेख से पता चलता है कि

१—इसका सम्पूर्ण विवरण मास्पेरो ने अपनी पुस्तक 'चम्पा का राज्य' में किया है (पृ० १५५-१५६)। कोड ने अपनी पुस्तक 'हिन्दचीन और हिन्दनेशिया के हिन्दू राष्ट्र' में इसी ग्रन्थ से यह विवरण उद्धृत किया है (पृ० २७०)।

२—मास्पेरो, 'अनाम और कम्बुज की सीमा' सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग १८ (३), पृ० ३४।

जयहरिवर्मन् ने कम्बुज सेना को बुरी तरह पराजय दी ।[१] यह कदाचित् ११४५ ई० की घटना है । एक वर्ष बाद एक और सेना भेजी गई पर यह भी हार गई । दो बार हराने के बाद अब जयहरिवर्मन् ने स्वयं धावा बोलने का प्रयास किया । सूर्य-वर्मन् ने अपनी पहली रानी के भाई को विजय का राजा घोषित कर दिया । पर इसके वहाँ आने से पहिले ही जयवर्मन् ने उस पर अधिकार कर लिया । यह ११४९ ई० की घटना है । सूर्यवर्मन् का अन्तिम लेख ११४५ ई० का है पर यह इसके राज्य-काल का अन्तिम वर्ष न था । ११५० ई० में उसने अनाम के विरुद्ध एक और सेना भेजी किन्तु वर्षा आरम्भ होने के कारण वह नष्ट हो गई । सूर्यवर्मन् का समय युद्ध करते ही बीता । यद्यपि विदेशी सूत्रों से हर समय उसकी पराजय ज्ञात होती है किन्तु उसके स्वयं लेखों में लिखा है कि अपनी दिग्विजयों के कारण वह रघु से भी आगे बढ़ गया ।[२] चीनी ग्रन्थों के अनुसार[३] चम्पा से दक्षिण ब्रह्मा तक फैला था और उसमें मलय देश का बैन्डों की खाड़ी तक का प्रान्त सम्मिलित था । सूर्यवर्मन् ने अंगकोर वाट की स्थापना

१—मजुमदार : चम्पा भाग ३, न० ७४—पृ० १८३,

पूर्व्वप्रतिज्ञया सैन्यं कम्ब्रोश्च यवनस्य च ।
हत्वादौ यः पुनश्चक्रे शैवं तन्नाशितं गृहम् ।। पद १३

२—वन-यत्त लेख—मजुमदार : कम्बुज लेख, न० १७३, पृ० ४५३
द्वीपान्तरेन्द्राश्च जिगीषिता ये, प्राप्तानपश्यत् करवाहिनस्तान्
स्वयं प्रयाय द्विषतो प्रदेशं, रघुञ्जयनतं लघयञ्चकार ।। पद ३५

३—मा-त्वान-ली का वृत्तान्त जिसका अनुवाद सेन्ट-डेनिस के हर्वे ने किया । देखिये—कोड : हिन्दू राष्ट्र, पृ० २७३ ।

की थी। इसके मृत्योपरान्त के नाम 'परमविष्णुलोक' से प्रतीत होता है कि वह वैष्णव धर्म की ओर अधिक झुका हुआ था। अंगकोर बाट में विष्णु कृष्ण की लीलाएँ प्रदर्शित हैं। १२वीं शताब्दी में भक्ति मार्ग कम्बुज और जावा में जोर पकड़ रहा था। यह आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि अपने प्रारम्भिक जीवन में सूर्यवर्मन् तान्त्रिक था और उसे दिवाकर पंडित ने वृह गुह्य (तन्त्र) की दीक्षा दी थी, पर जीवन के अन्तिम काल में वह विष्णु कृष्ण की भक्ति में लीन हो गया। इस सम्राट् का अन्तकाल का इतिहास अन्धकारमय है। ११५५ ई० में एक दूत यहाँ से चीन गया था पर वह इस विषय पर कुछ नहीं कहता है। सूर्यवर्मन् द्वितीय के पश्चात् धरणीन्द्र-वर्मन् द्वितीय सम्राट् हुआ।

धरणीन्द्रवर्मन् यशोवर्मन् द्वितीय—धरणीन्द्रवर्मन् का सूर्यवर्मन् द्वितीय के साथ कोई सम्बन्ध न था, पर इसकी राज्ञी हर्षवर्मन् कदाचित् हर्षवर्मन् तृतीय की पुत्री थी। कोड का कहना[1] है कि राज-प्रासाद में कोई विप्लव के कारण उसे सम्राट् बना दिया गया होगा। इस सम्राट् के कोई लेख अभी तक नहीं मिले हैं। यह बौद्ध था, अतः इसके समय में इस धर्म की वृद्धि हुई। इसके बाद यशोवर्मन् द्वितीय गद्दी पर बैठा पर इसका भी गत सम्राट् से कोई सम्बन्ध न था। वन्तेचमर के एक लेख[2] से इसके राज्य-काल पर प्रकाश डाला

१—हिन्दू राष्ट्र, पृ० २७५—इसके मतानुसार धरणीन्द्रवर्मन् सूर्यवर्मन् द्वितीय का कोई वंशज न था वरन् उसका बन्धु था। उसने हर्षवर्मन् तृतीय की पुत्री चूडामणि के साथ विवाह किया था।

२—देखिये : सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २९, पृ० ३१०; कोड

जा सकता है। इसके समय में भरत राहु सम्बुद्धि नामक व्यक्ति ने विप्लव खड़ा कर दिया और इसने भीषण रूप धारण कर लिया। लेख के साथ अंकित चित्र में राहु को सूर्य को ग्रसित करते दिखाया गया है। विप्लव को शान्त करने का श्रेय राजकुमार श्रीन्द्रकुमार को था जो कदाचित् भविष्य सम्राट् जयवर्मन् सप्तम का पुत्र था। इसी कुमार की अध्यक्षता में एक सेना चम्पा की ओर भेजी गई। उस समय वहाँ का सम्राट् जयइन्द्रवर्मन् चतुर्थ था। पहिले तो श्रीन्द्रकुमार को सफलता मिली पर अन्त में यह प्रयास पूर्णतया असफल रहा। श्रीन्द्रकुमार की कम्बुज से लौटकर मृत्यु हो गई। चम्पा की ओर से शान्ति नहीं हुई थी। इस बार श्रीन्द्रकुमार के पिता जयवर्मन् को भेजा गया पर इसी बीच में एक दूसरा विप्लव त्रिभुवनादित्य के आधिपत्य में खड़ा हो गया। जयवर्मन् सेना सहित कम्बुज लौटा पर इधर यशोवर्मन् द्वितीय का वध कर दिया गया था और कम्बुज के सिंहासन पर त्रिभुवनादित्यवर्मन् आरूढ़ था। यह घटना ११६६ ई० के पहले की है। त्रिभुवनादित्य का राज्यवंश से कोई सम्बन्ध न था।

त्रिभुवनादित्य—त्रिभुवनादित्य का अधिक समय युद्ध में बीता इसका विवरण कम्बुज के लेख तथा चीनी वृत्तान्त में मिलता है और मास्पेरो ने अन्वेषण करके इस विषय पर

हिन्दू राष्ट्र, पृ० २७८। बन्ते-चमर में भरत तथा राहु को चित्रित भी किया गया है (सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग १०, पृ० २१५)। इस विषय पर कोड ने पूर्ण रूप से प्रकाश डाला है (सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २६, पृ० ३०५)।

लिखा है।[१] इनके आधार पर यह कहा जाता है कि चम्पा के सम्राट् जयइन्द्रवर्मन् ने कम्बुज पर आक्रमण किया और त्रिभुवनादित्यवर्मन् की पराजय हुई और वह मारा गया। चीनी सूत्र के अनुसार यह युद्ध ७ वर्ष तक चलता रहा। अन्त में जयवर्मन् ने एक बड़ा बेड़ा भेजा जो मेकाँग नदी से होकर राजधानी पहुँचा और लूट-मार कर लौट गया। इस लड़ाई में त्रिभुवनादित्य मारा गया। कम्बुज देश की रक्षा जयवर्मन् ने की और सामुद्रिक युद्ध में इसने चम पर विजय पाई।

जयवर्मन् सप्तम—कम्बुज देश का अन्तिम सम्राट् जयवर्मन् सप्तम था। यह शक सं० ११०४–११८२ ई० में सिंहासन पर बैठा। इसके काल के कई लेख मिले हैं किन्तु सफोंग का शक सं० ११०८ का लेख,[२] ताप्रोम का ११०८–

१—चम्पा के साथ युद्ध का वर्णन हमको कम्बुज लेख तथा चीनी वृत्तान्तों में भी मिलता है। मास्पेरो ने अपने ग्रन्थ 'चम्पा का राज्य' में इसका पूर्ण रूप से विवरण दिया है (देखिये पृ० १६४)। चम्पा के लेखों में भी कम्बुज के साथ संघर्ष का उल्लेख है (देखिये पो नगर लेख)। इसके अनुसार जयइन्द्रवर्मन् ने कम्बुज पर ११७० ई० में आक्रमण किया, और यह संघर्ष ७ वर्ष चलता रहा। इसके बाद उसने ११७७ ई० में एक बड़ा सामुद्रिक बेड़ा भेजा जो मेकांग नदी से राजधानी की ओर बढ़ा। वहाँ लूटकर वह वापस चला गया (देखिये मजुमदार : चम्पा भाग २, पृ० १६८)। कम्बुज लेख के अनुसार इसमें त्रिभुवनादित्य मारा गया और जयवर्मन् ने चम सैनिकों को सामुद्रिक युद्ध में हराकर अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा की। इसके चार वर्ष बाद वह कम्बुज का सम्राट् हो गया। वेग्रान तथा वन्ते चमर की दीवारों पर देश को स्वतन्त्र कराने के चित्र अंकित हैं (देखिये—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३२, पृ० ७६-७८)

२—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३, पृ० १८; मजुमदार लेख : कम्बुज न० १७६, पृ० ४६२।

११८६ ई० का लेख,[१] प्रसत तोर का ११११ अथवा १११७ का लेख[२] तथा फिमनक[३] और कोड के मतानुसार बन्ते-चमर[४] के लेख प्रमुख हैं। दो अन्य लेख[५] सम्बोर तथा प्रसत-लिक[६] भी उल्लेखनीय हैं। पहिले की तिथि कोड ने शक संवत् ११२६ निर्धारित की है और दूसरे में **ज** अक्षर छूटा हुआ है और केवल **यवर्मदेव** लिखा है। यदि इसको जयवर्मदेव मान लें तो इसकी अन्तिम तिथि ११२८ शक सं० १२०६ ई० आती है और इसने लगभग २५ वर्ष तक राज्य किया। इस काल में उसने अपने शौर्य तथा पराक्रम का परिचय भिन्न क्षेत्रों में दिया। पर साथ ही साथ यदि उसके दानों का भी उल्लेख किया जाय, जो लेखों में मिलते हैं, तो प्रतीत होगा कि कदाचित् यह कर्ण से भी आगे बढ़ गया होगा। ता-प्रोम के लेख में उसके तथा उसकी माँ जयराजचूड़ामणि के वंशों का उल्लेख है। जयवर्मन् का

१—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ६, पृ० ४४ : मजुमदार कम्बुज लेख न० १७७, पृ० ४५६।

२—कोड : कम्बुज लेख, भाग १, पृ० २२७; मजुमदार : कम्बुज लेख न० १८०, पृ० ५०३।

३—फिनो : सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २५, पृ० ३७२; कोड : कम्बुज लेख, भाग २, पृ० १६१; मजुमदार : कम्बुज लेख न० १८२, पृ० ५१५।

४—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २९, पृ० ३०९; मजुमदार : कम्बुज लेख न० १८३, पृ० २२८।

५—कोड : कम्बुज लेख, भाग २, पृ० ८७, मजुमदार : कम्बुज लेख न० १८४, पृ० ५३०।

६—यही भाग ३, पृ० ११६; यही न० १८५, पृ० ५३१।

पिता धरणीन्द्रवर्मन् द्वितीय, जयवर्मन् षष्ठ की बहिन का लड़का था। जयवर्मन् सप्तम की माँ भववर्मन् वंशज हर्षवर्मन् की लड़की थी। अतः जयवर्मन् कई राज्यों का राजा था। फिमनक लेख के अनुसार इसका विवाह पहिले जयदेवी के साथ हुआ था और उसकी मृत्यु के पश्चात् जयवर्मन् ने इसकी बड़ी बहिन इन्द्रदेवी के साथ विवाह किया जो बड़ी विदुषी थी। इसने बौद्ध भिक्षुणियों को पढ़ाने का भार अपने ऊपर ले लिया था। यह दोनों बहिनें रुद्रवर्मन् नामक ब्राह्मण की पौत्री थीं। उन्होंने जयवर्मन् के ऊपर बड़ा प्रभाव रक्खा और वह बहुत बड़ा बौद्ध सम्राट् हो गया है।

दिग्विजय—यशोवर्मन् द्वितीय के समय से ही जयवर्मन् ने चमों का बड़ी वीरता से मुकाबला किया था और अन्त में इसने उन पर विजय पाई और वह कम्बुज में सिंहासनारूढ़ हुआ। चम्पा की ओर से शान्ति न मिल सकी और इसके राज्य-काल में पूर्व तथा पश्चिम दिशाओं में सम्राट् को अपनी सेनाएँ भेजनी पड़ीं। चम्पा में युद्ध का उल्लेख कम्बुज लेख, चम्पा के लेख तथा मा-त्वान-लिन् के वृत्तान्त में मिलता है। इनके आधार पर हम इस पर पूर्णतया प्रकाश डाल सकते हैं। ता-प्रोम के लेख के अनुसार उसने चम्पा के सम्राट् को बन्दी कर लिया पर बाद में उसे छोड़ दिया गया (चम्पागतस्य युधि यस्य गृहीतमुक्त)। फिमनक के लेख में लिखा है कि जयवर्मन् ने चम्पा की राजधानी विजय की ओर अपनी सेना भेजी। चम्पा का भावी राजा जयइन्द्रवर्मन् कम्बुज की ओर बढ़ा पर अन्त में विजय पर कम्बुजों का अधिकार

हो गया।[१] कोड ने लेख की कुछ गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास किया है। इसके मतानुसार[२] सम्राट् होने से पहिले जयवर्मन् ने कम्बुज देश पर आक्रमण किया था किन्तु राज्य-विप्लव के कारण उसे शीघ्र ही वापस आना पड़ा। बीच में त्रिभुवनादित्य कम्बुज का राजा हो गया। अन्त में चम को हराकर जयवर्मन् कम्बुज देश का सम्राट् हो गया। सम्राट् होने के बाद भी कम्बुज और चम्पा के बीच द्वन्द्व चलता रहा। मा-त्वान-लिन के वृत्तान्त से प्रतीत होता है कि जयवर्मन् ने चम्पा पर आक्रमण कर पिछला बदला चुका लिया और चम्पा की राजधानी को लूटा। उसने वहाँ के राजा को हटा कर उसके स्थान पर अपना प्रतिनिधि बैठाया। बहुत काल तक चम्पा कम्बुज के आधीन रहा। इस सम्बन्ध में चम्पा के लेखों से ज्ञात होता है कि इन दोनों देशों के बीच का युद्ध ११९० ई० में आरम्भ हुआ।[३] चम्पा के सम्राट् जयइन्द्र-वर्मन् ने कम्बुज के विरुद्ध एक सेना भेजी; जयवर्मन् सप्तम ने उसे रोकने का प्रयास किया। इस कार्य में श्री सूर्यवर्मदेव कुमार श्री विद्यानन्द ने अपने पराक्रम का परिचय दिया। इसके सेनापतित्व में एक सेना चम्पा भेजी गई। उसने चम्पा

१—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २, पृ० १३०। मास्पेरो के अनुसार चीनी वृत्तान्तों में चम्पा पर कम्बुज आक्रमण की तिथि ठीक नहीं मिलती है (चम्पा का राज्य, पृ० १६४, नोट ८)।

२—हिन्दू राष्ट्र, पृ० २८८।

३—देखिये शक सं० ११२५ का माइसन स्तम्भ लेख, जिसमें कम्बुज-चम्पा के संघर्ष का पूर्णतया उल्लेख किया गया है। इस सम्बन्ध में पूर्णतया वृत्तान्त इसी आधार पर लिखा गया है (मजुमदार : चम्पा भाग ३, न० ८४, पृ० २०२; सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ४, पृ० ९७०)।

की राजधानी विजय पर अधिकार कर लिया।

चम्पा का राज्य दो भागों में विभाजित कर दिया। उत्तरी भाग जयवर्मन् ने अपने श्याले को दे दिया और उसकी राजधानी विजय थी। दक्षिणी भाग कुमार विद्यानन्द को दे दिया गया और उसकी राजधानी राजपुर थी। उत्तरी भाग पर थोड़े ही काल बाद रुपपति नामक एक व्यक्ति ने अधिकार जमा दिया और श्री जयेन्द्रवर्मदेव के नाम से अपने को सम्राट् घोषित किया। कम्बुज सेना विजय पर अधिकार करने के लिए फिर भेजी गई। इसके साथ चम्पा का पिछला राजा भी था। कुमार विद्यानन्द की अध्यक्षता में कम्बुज सेना ने विजय पर अधिकार कर लिया, और तब विद्यानन्द ने सम्पूर्ण चम्पा पर अधिकार जमा लिया। इसके पश्चात् कम्बुज और चम्पा के नवीन सम्राट् के बीच युद्ध छिड़ गया। पहिले तो कम्बुज के सेनापतियों को पराजय का मुँह देखना पड़ा किन्तु अन्त में वह हार गया और १२०३ ई० में धनपति, कम्बुज के आधिपत्य में वहाँ का सम्राट् हुआ। इन दोनों देशों के राजनीतिक ऐक्य के कारण अनाम के साथ संघर्ष स्वाभाविक हो गया। न-घे-अन के युद्ध में कम्बुज की ओर से स्याम और दक्षिण ब्रह्मा के पुगान के सैनिक भी लड़ रहे थे। अनाम के साथ युद्ध में हार-जीत का निर्णय न हो सका। इन युद्धों से कम्बुज की शक्ति को बड़ा धक्का पहुँचा। प्रा-खान के लेख[1] में चम्पा, यवन, पुकम (ब्रह्मा के पगान) तथा मौं से लाये हुए बन्दी चाकरों का उल्लेख है। इससे यह प्रतीत होता है कि कदाचित् यशोवर्मन् के समय में

१—मजुमदार: कम्बुज देश, पृ० ४७७।

दक्षिणी-पश्चिमी क्षेत्रों में भी युद्ध हुआ होगा। चीनी सूत्रों के आधार पर पगान पर कम्बुज का १२वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में अधिकार हो गया था। जयवर्मन् के प्रसत-तोर लेख में पश्चिम के राज्य पर विजय प्राप्त करने का उल्लेख है। अतः जयवर्मन् ने कम्बुज राज्य की सीमा को विस्तृत किया।

जयवर्मन् बड़ा दानी था। ता-प्रोम के लेख से ज्ञात होता है कि धार्मिक कार्यों में विशेष रूप से धन व्यय किया। इस विषय में डा० मजुमदार[१] ने आँकडा लगाकर लिखा है कि राजविहार नामक तथा निकटवर्ती मन्दिरों में ३,४०० गाँव लगे थे और ६६,६२५ व्यक्ति इसमें काम करते थे। ४३९ अध्यापक और ९७० विद्यार्थी यहाँ रहते थे जिनको भोजन इत्यादि वहीं से मिलता था। उसने १०२ अस्पताल भी बनवाये और १२१ धर्मशालायें स्थापित कीं। जयवर्मन् बौद्ध था और मृत्यूपरान्त इसका 'महापरम-सौगत' नामकरण हुआ। इसने लगभग २५ वर्ष तक राज्य किया।[२]

कम्बुज के अन्तिम शासक—जयवर्मन् सप्तम के पश्चात् श्री इन्द्रवर्मन् सम्राट् हुआ। इसके लेख सं० १२२६ और १२३०[३] के मिले हैं। इसके बाद जयवर्मन् अष्टम सम्राट्

१—मजूमदार : कम्बुज देश, पृ० १३२।

२—इसकी मृत्यु की ठीक तिथि निर्धारित करना कठिन है पर कोड ने इस मत का खण्डन किया है कि यह १२०३ ई० में स्वर्गगामी हुआ। (सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २९, पृ० ३२८)।

३—देखिये बन्ते तथा कोक—स्वे—चेक लेख (मजुमदार : कम्बुज लेख—क्रमशः न० १८७ तथा १८८, पृ० ५३२, ५३३); सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३६, पृ० १४—यह कहना कठिन है कि किस परिस्थिति में इन्द्र-

हुआ। अंगकोर के एक लेख[१] से पता चलता है कि शक स० ११६५–१२४३ ई० में इन्द्रवर्मन् का स्वर्गवास हो गया और इसके पश्चात् जयवर्मन् अष्टम सम्राट् हुआ। इसने नरपति देश (कदाचित् ब्रह्मा) से आगन्तुक ब्राह्मण जयमहा-प्रधान की कम्बुज पत्नी श्री प्रभा से उत्पन्न पुत्री से विवाह किया था। इस ब्राह्मण की मृत्यु पर इसकी लड़की और सम्राट् ने शक सं० १२१७–१२९५ ई० में उसकी मूर्ति की स्थापना की थी। इस लेख से जयवर्मन् अष्टम के राज्य-काल की तिथि निर्धारित होती है। इसकी मृत्यु के पश्चात् इसके जामातृ श्रीन्द्र का अभिषेक हुआ। इसके काल में चीन से एक दूत कम्बुज आया था जिसने यहाँ के लोगों के विषय में लिखा है। इस सम्राट् ने शक सं० १२२९–१३०७ ई० में सिंहासन छोड़ दिया[२] और वन में तप करने चला गया। तदुपरान्त उसका एक सम्बन्धी श्री श्रीन्द्रजयवर्मन् सिंहासना-रूढ़ हुआ।[३] एक लेख में इसकी अन्तिम तिथि १२३०–१३०८ ई० दी हुई है। एक अन्य लेख[४] से जयवर्मन्

कुमार अपने पिता के बाद इन्द्रवर्मन् के नाम से सम्राट् हुआ। अन्य उत्तराधिकारियों में सूर्यकुमार तथा राजेन्द्र देवी का पुत्र वीरकुमार थे।

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १९०, पृ० ५४०।

२—कोड ने लेख में 'अगमद्वनम्' पढ़ा और उनकी धारणानुसार यह सम्राट् तप करने वन चला गया। (सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २६, पृ० १५) फिनो ने इसे 'अगमन् नृप' पढ़ा और इसके अनुसार इस संवत् में इस सम्राट् की मृत्यु हो गई (सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २५ पृ० ३९३)।

३—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १९१, पृ० ५४८।

४—वेचों का लेख—कोड : कम्बुज लेख, भाग २, पृ० १८७; मजुमदार : कम्बुज लेख न० १९२, पृ० ५५७।

परमेश्वर नामक एक कम्बुज सम्राट् का पता चलता है। इसके पश्चात् का इतिहास हमें लेखों से ज्ञात नहीं होता है। ख्मेर वृत्तान्तों से कम्बुज देश के अन्तिम काल के इतिहास पर अवश्य प्रकाश डाला जा सकता है। चीन से सम्पर्क स्थापित था और १३२० ई० में चीन से पालतू हाथी लेने यहाँ आया। १३२७ ई० में जयवर्मन् परमेश्वर नामक सम्राट् हुआ जिसके वंश का पता नहीं चलता है। यह नहीं कहा जा सकता कि इसने कितने काल तक राज्य किया। कम्बुज का अन्तिम इतिहास दो निकटवर्ती राज्यों के संघर्ष का चित्रपट है। एक तो सुखोदय राज्य के बाद अयूथिया में १३५० में स्थापित थाई राज्य था, और दूसरा अनाम का राज्य था जिसका अधिकार चम्पा पर हो गया था। कम्बुज देश के सम्राट् इतने शक्ति-शाली न थे कि वे इन शक्तियों पर काबू पा सकते। अन्त में उन्हें १९वीं शताब्दी में फ्रांसीसियों की शरण जाना पड़ा।

कम्बुज राज्य के अन्त के विशेष अध्ययन के लिए कोड का 'हिन्दू राष्ट्र' देखिये, पृ० ३५२।

भाग २

अध्याय १

शासन-व्यवस्था

बृहत् कम्बुज साम्राज्य को राजनीतिक सूत्र में बाँधने के लिए यह आवश्यक था कि शासन-व्यवस्था सुदृढ़ हो। ७०० वर्ष के कम्बुज इतिहास में इस देश के स्वतन्त्र अस्तित्व को मिटाया नहीं जा सका, यद्यपि यह कई शक्तिशाली राज्यों से घिरा था। इसका श्रेय यहाँ के सम्राटों को है पर साथ ही शासन-प्रणाली और सम्राट् तथा देश के प्रति स्वामि-भक्ति की दृढ़ भावना इसमें सहायक सिद्ध हुई। लेखों से प्रतीत होता है कि प्रत्येक कर्मचारी को सम्राट् के प्रति स्वामि-भाक्त की शपथ लेनी पड़ती थी तथा सञ्जक नामक कुछ ऐसे व्यक्ति भी थे, जो सदैव मरने-मारने के लिए तैयार रहते थे। इस लम्बे इतिहास में एक बात विशेषतया उल्लेखनीय है। यद्यपि देश में भिन्न-भिन्न वंशों के राजाओं ने राज्य किया और देश दो भागों में भी कुछ समय तक विभाजित रहा तथापि शासन-व्यवस्था सदैव ही राजकीय रही। गणतन्त्र अथवा प्रजातन्त्र का इस देश में समावेश नहीं हुआ। यहाँ के संस्कृत लेखों में उल्लिखित कुछ शासन-व्यवस्था सम्बन्धी शब्दों के आधार पर हम इस देश की शासन-प्रणाली पर प्रकाश डाल सकते हैं। इस सम्बन्ध में हम सम्राट् के प्रतिष्ठित पद, राज्य-सभा, प्रान्तीय शासक, राज्याधिकृत शासक, भिन्न-

भिन्न नागरिक तथा सैनिक पद, न्याय-व्यवस्था, अन्य छोटे पद, स्थानीय शासन, माल तथा बिक्री व्यवस्था, छोटे पद, नियुक्ति इत्यादि विषयों पर विचार करेंगे। लेखों में अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्र[१] का भी उल्लेख आया है जिससे प्रतीत होता है कि इन शास्त्रों का अध्ययन होता होगा और कम्बुज देश की शासन-प्रणाली भारतीय व्यवस्था के आधार पर बनी होगी।

सम्राट् पद—सम्राट् के दैवी पद का उल्लेख हमें जयवर्मन् द्वितीय के एक लेख से प्रतीत होता है जिसमें लिखा है कि जयवर्मन् भगवान् शिव का अंश होकर उत्पन्न हुए थे।[२] इसमें संशय नहीं कि सम्राट् का स्थान सब से श्रेष्ठ था, और उसमें सभी शक्तियाँ सीमित थीं। प्रबन्ध, न्याय तथा सेना का वह सब से उच्च अधिकारी था। इसकी रक्षा के लिए मुख्य अंगरक्षक के अतिरिक्त कई और पदाधिकारी थे, जैसे शयनागृह परीक्षक, नरेन्द्र परिचारक इत्यादि राज-प्रासाद के विशेष रूप से रक्षक थे। सम्राट् के अधिकारों में प्रान्तीय शासकों की नियुक्ति और न्याय इनके ऊपर निर्णय[३]

१—तस्य तौ मन्त्रिणावास्तां सम्मतौ कृतवेदिनौ।
धर्म्मशास्त्रार्थ शास्त्रज्ञौ धर्म्मार्थाविव रूपिनौ॥
—मजुमदार : न० ३०, पृ० ३९, श्लोक ६

एक लेख में सम्राट् के एक विश्वसनीय पदाधिकारी का उल्लेख है जो सर्वोपधाशुद्ध था (न० ३३)। उपधा अथवा प्रलोभन का विवरण अर्थशास्त्र में भी मिलता है। (प्रथम पुस्तक—अध्याय १०)

२—यस्य लिङ्ग सहस्त्रारामं...............
तदंशेनावतीर्ण्णेन जितं श्री जयवर्म्मणा
—मजुमदार : न० ३४, पृ० ४५, पाद २-३

३—जयवीरवर्मन् के तुओल-प्रसत लेख में लिखा है कि मुख्य न्याया-

करना तथा देश के समस्त कार्यों में हस्तक्षेप करना था।[1] कदाचित् जो कार्य उसके सम्मुख रक्खा जाता था उस पर वह स्वतन्त्र रूप से विचार कर अपना निर्णय देता था। एक लेख में राजसभाधिपति[2] पद का भी उल्लेख है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस सभा के क्या अधिकार थे और इसका सम्राट् से क्या सम्बन्ध था। सम्राट् की सहायता के लिए मन्त्री तथा अन्य पदाधिकारी भी थे। एक लेख[3] में सभाधिपतिवर्मन् तथा जयेन्द्र का उल्लेख है जो मन्त्री थे। जयवर्मन् प्रथम का मन्त्री ज्ञानचन्द्र था।[4] राज्यकार्य में पुरोहित भी विशेष रूप से सहायक था। उसे राज्य-कुल महामन्त्री[5] कहते

धीश श्री पृथ्वीन्द्र पण्डित तथा न्यायालय के अन्य सदस्यों ने अपना निर्णय सम्राट् के सम्मुख रक्खा जो उस समय जयेन्द्रनगरी के राजप्रासाद में था। (मजुमदार : न० १२२, पृ० ३११)।

१—निग्रक-त-करेक के लेख में सम्राट् राजेन्द्रवर्मन् के सम्मुख वीरपुर विषय अध्यक्ष भ्रताञ कुरुञ वीर भक्ति-गर्जित के विरुद्ध प्रार्थना का उल्लेख है, क्योंकि उसने प्रार्थी के धान का खेत काट लिया था। सम्राट् ने दोष प्रमाणित पाया और उस पर दस औंस सोने का दण्ड दिया। मजुमदार : न० ९९, पृ० २६८।

२—स्वस्वामिन प्रसादात् स-च राजसभाधिपत्य कृतनामा।

—मजुमदार न० ३३, पृ० ३३।

३—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १०९, पृ० २८३।

४—यही न० २८, पृ० ३६।

तस्यामात्यो ऽनवद्यात्मा कुलीनो विदुषां मतः।

विख्यातो ज्ञान चन्द्राख्यो गुणज्ञो गुणीनां गुणी ॥ पाद ६

५—यही न० १००, पृ० २६९; न० १०६, पृ० २७९; तथा न० २००, पृ० ५८२।

थे। सम्राट् प्रान्तीय शासक तथा परतन्त्र शासकों की नियुक्ति भी करता था। एक लेख[१] में जारांग के शासक की सम्राट् द्वारा 'अत्राधिपति' पद पर नियुक्ति का उल्लेख है। वह सम्राट् स्वयं भी युद्ध-क्षेत्र में जाकर अपनी शौरता का परिचय देता था। न्याय विषय में इसके पास निवेदन किया जा सकता है और उसे न्याय का सर्वोच्च अधिकार था। सम्राट् से संबंधित कुछ अन्य पदाधिकारी भी थे जैसे प्रमुख अंगरक्षक (नृपान्तरंग) तथा द्वाराध्यक्ष।[२] चीनी वृत्तान्त के अनुसार सम्राट् के सहस्रों रक्षक थे।

प्रान्तीय शासक—कम्बुज राज्य भिन्न क्षेत्रों में विभाजित था। चीनी वृत्तान्तों के आधार पर उनकी संख्या ३० थी पर लेखों में थोड़े प्रान्तों का उल्लेख है। यह तन्द्रपुर, ताम्रपुर, आढ्यपुर, श्रेष्ठपुर, भवपुर, ध्रुवपुर, धन्विपुर, ज्येष्ठपुर, विक्रमपुर, उग्रपुर तथा ईशानपुर थे। आढ्यपुर का शासक सिंहदत्त सम्राट् का राज्याभिषेक भी था।[३] धर्मपुर का शासक एक ब्राह्मण था।[४] ज्येष्ठपुर तथा भवपुर के

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० ८७, पृ० १७६, पाद ६।

२—यही न० ६१, पृ० ८२, पाद ८७—एक चीनी वृत्तान्त के अनुसार सम्राट् के प्रासाद के सामने कोई एक सहस्र अंगरक्षक रहते थे। एक लेख में इन नृपान्तरंग योद्धाओं के विषय में लिखा है कि वे हाथ में अस्त्र धारण करते थे और शिर पर त्राण पहिनते थे (शिरस्त्राणधारिणां शस्त्रपाणिनां नृपान्तरंग योधानां···) न० ३४, पृ० ४६ पाद १६।

३—न० ३०, पृ० ३६, पाद ५।

४—न० ३४, पृ० ४५।

शासकों ने अन्य व्यक्तियोंसहित भूमि तथा दास-दासियाँ शंकर नारायण देव को अर्पित की थीं।[१] एक अन्य लेख[२] में भवपुर के शासक समराधिपतिवर्मन् को वहाँ का पैतृक अधिकारी कहा है। 'ख्लोनवल' नामक शब्द का 'विषय' से सम्बन्धित प्रयोग मिलता है। इसके अर्थ स्पष्ट नहीं हैं। इन शासकों की नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती थी। एक लेख में लिखा है[३] कि धर्मस्वामिन् के ज्येष्ठ पुत्र की नियुक्ति क्रमशः कई पदों पर हुई। पहिले वह महाश्वपति था और उसके पश्चात् वह श्रेष्ठपुर तथा धर्मपुर का शासक नियुक्त हुआ। इन प्रान्तीय शासकों के अतिरिक्त राज्याधिकृत शासक भी थे। ताम्रपुर के एक शासक ने ईशानवर्मन् के समय में शिव-विष्णु की मूर्त्ति की स्थापना की थी। यह ताम्रपुर के अतिरिक्त चक्रांकपुर, अमोघपुर तथा भीमपुर का भी शासक था।[४]

मुख्य पदाधिकारी—कम्बुज लेखों में बहुत से पदाधिकारियों का उल्लेख है। इनमें से मुख्यतया कुमारमन्त्रि[५] बलाध्यक्ष[६], मन्त्री[७], राज्यभिषेक[८] तथा राजकुल महामन्त्री[९]

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० ४२, पृ० ५२।
२—यही न० १२०, पृ० ३१०।
३—यही न० ३४, पृ० ४४।
४—यही न० २५, पृ० ३०।
५—यही न० ६६, पृ० १२७, पाद १०६।
६—यही न० ७१, पृ० १४९, पाद ४१।
७—यही न० ६६, पृ० १३३, पाद ५९।
८—यही न० ३०, पृ० ३९, पाद ३।
९—यही न० १००, पृ० २६९।

थे। कुमार-मन्त्री पद की समानता कुमारामात्य[१] से की जा सकती है जिसका उल्लेख भारत के बहुत से लेखों में मिलता है। वे राजकुमारों के मन्त्री होते थे। बलाध्यक्ष पद का भी भारतीय लेखों में उल्लेख है।[२] कुछ विद्वानों के मतानुसार यह सेना का सब से उच्च अधिकारी था, किन्तु इसकी सेनापति से समानता नहीं की जा सकती है। कदाचित् यह सेना से सम्बन्धित विशेष अधिकारी था जो केन्द्रीय शासन के आधीन था। मन्त्रियों की संख्या एक से अधिक थी क्योंकि एक ही लेख में दो मन्त्रियों का उल्लेख है। इनकी नियुक्ति शासक द्वारा होती थी। सैनिक क्षेत्र में सहस्र-वर्गाधिपति[३] एक सहस्र सैनिकों का अध्यक्ष अथवा सेनापति था। घुड़सवारों का अध्यक्ष महाश्वपति[४] कहलाता था और जल-सेना का अलग वाहक था जो नौवाह्न[५] कहलाता था। कम्बुज

१—भण्डारकर : उत्तरी भारत लेख सूची न० १२७०, १२७१, १२७२ इत्यादि।

२—इसका उल्लेख मनुस्मृति तथा हरिवंश में भी पाया जाता है। लेखों में 'बलाधिकृत' नामक अधिकारी का भी विवरण है और यह महाभारत तथा हरिवंश में भी पाया जाता है। कदाचित् यह दोनों पर्यायवाची हैं और यह अधिकारी सेनापति से भिन्न रहा होगा। हमारे विचार से यह सैनिक सचिव रहा होगा जिसका रणभूमि से कोई सम्बन्ध न था (बलाध्यक्ष के लिए मोनियर विलियम्स का संस्कृत कोष देखिये तथा 'बलाधिकृत' के लिए एपीग्राफ़िया इण्डिका भाग १०, पृ० ८५; भाग १४, पृ० १८२, तथा महाभारत ७ : १८६ और हरिवंश १५८४१ देखिये)।

३—मजुमदार : कम्बुज लेख, न० ३४, पृ० ४६, पाद १६।

४—यही पाद ११।

५—यही पाद १८।

की भौगोलिक स्थिति के कारण जल-सेना का विशेष रूप से प्रबन्ध होना आवश्यक था। एक लेख में महानौवाहक तथा समन्त नौवाहे का उल्लेख है। राजहोतृ[१] का धार्मिक विभाग से सम्बन्ध रहा होगा।

अन्य पदाधिकारी—इनके अतिरिक्त कुछ अन्य पदाधिकारी भी थे जिनका लेखों में उल्लेख है जैसे द्वाराध्यक्ष[२] अत्रधिपति[३], राजकीय उद्यानों के निरीक्षक, गुण दोष परीक्षक[४]। प्रसत कोमनप[५] के यशोवर्मन् के लेख में बहुत से ऐसे अधिकारियों का उल्लेख है जिनका वैष्णव, शैव और बौद्ध आश्रमों से सम्बन्ध था। इनमें लेखक, राजकुटीपाल पुस्तक रक्षिण प्रमुख थे। लेखक की समानता कायस्थ से की जा सकती है, और पुस्तक रक्षिण कागज अथवा प्रमाण-पत्रों की रक्षा करता था। राजकुटीपाल के अर्थ कदाचित् राजकीय मुद्रा रखने वाला होगा। इनके अतिरिक्त ताम्बूलिक पान ले जाने वाला, पनीयहार–पानी लाने वाला, पत्रकार–पत्र ले जाने वाला, उल्कैधहार—दीपक दिखाने वाला, शाकादिहार–तरकारी इत्यादि लाने वाला, भक्तकार–भोजन बनाने वाला का भी उल्लेख है। इनका कोई राज्य-प्रणाली में स्थान नहीं प्रतीत होता है पर यह आश्रमों से सम्बन्धित थे।

न्याय-व्यवस्था—इस विषय में हमें बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० ७१, पृ० १४८, पाद ३३।
२—यही न० ६१, पृ० ८८, पाद ८७।
३—यही न० ८७ पृ० १७६ पाद ६।
४—यही न० १२५, पृ० ३१४।
५—यही न० ६६, पृ० ११६।

है। दो लेखों में पृथ्वीन्द्रपण्डित[1] का नाम मिलता है जो मुख्य न्यायाधीश था और इसके साथ अन्य भी थे। इसके नीचे न्यायाधीश को व्यवहाराधिकारी कहते थे। एक अन्य न्यायाधिकारी धर्माधिकरणपाल था। कदाचित् यह न्याय-विभाग का अध्यक्ष होगा। एक लेख में 'सभ्याधिप' शब्द आया है जिसके अर्थ डा० मजुमदार के अनुसार न्यायाधीशों[2] का श्रेष्ठ है। वास्तव में सम्राट् ही सर्वश्रेष्ठ न्यायाधीश था और उसके पास प्रार्थना-पत्र दिये जा सकते थे। वह उनको व्यवहाराधिकारी के पास भेजता था और अन्तिम निर्णय सम्राट् का ही होता था। माल और भूमि की बिक्री के सम्बन्ध में दूसरे प्रकार का व्यवहार होता था जिसका आगे उल्लेख होगा। एक लेख[3] में सम्राट् का वीरपुर के अध्यक्ष मृताञ्ज कुरुञ्ज वीरभक्ति के विरुद्ध फैसले का विवरण है। इसने एक मनुष्य की भूमि सीमा का उल्लंघन किया था। सम्राट् ने इस पर दस औंस सोना जुर्माना किया और उसके भाई को १०२ कोड़े का दण्ड दिया। इसी प्रकार के दण्ड का एक दूसरे लेख में विवरण मिलता है।

माल तथा भूमि बिक्री प्रबन्ध—भूमि बिक्री के लिए एक विशेष रूप से व्यावहारिक प्रबन्ध होता था।[4] सबसे पहिले भूमि लेने वाला अपने अधिकार की माँग के लिए प्रार्थना पत्र देता था। गुण-दोष परीक्षक उसकी जाँच करता था और

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १२२, पृ० ३११, पाद १२५।

२—कम्बुज देश।

३—कम्बुज लेख न० ९९, पृ० २६९।

४—यही न० १२५, पृ० १३१।

फिर नगर-सभा में बेचने वाले व्यक्ति बुलाये जाते थे। भूमि की सीमा निर्धारित करने का कार्य न्यायाधीश के आदेशानुसार व्यवहाराधिकारी करता था और इसकी सहायता के लिए धर्माधिकरणपाल तथा अन्य छोटे पदाधिकारी होते थे। इस लेख में बापपिट नामक दैव सम्पत्ति रक्षक (अमृत-कधन), तथा बाप धर्माचार्य, जो तृतीय श्रेणी का न्यायदण्डाधिकारी था, ने ग्राम के पुरुष प्रधान तथा ग्राम-वृद्धों की सहायता से भूमि की सीमाएँ निर्धारित कीं और उसका अधिकार प्रार्थी को सौंपा। इसकी फिर ढोल पीटकर घोषणा कर दी गई। इसी प्रकार की न्याय व्यवस्था का विवरण दूसरी भूमि के सम्बन्ध में इसी लेख में मिलता है। उसमें दो धर्मशास्त्रों के उच्चारणों का उल्लेख है। कदाचित् यह धर्मशास्त्र का आदेश देते होंगे।

अधिकारियों की नियुक्ति तथा स्वामि-भक्ति की शपथ—कम्बुज लेखों से प्रतीत होता है कि मुख्य-मुख्य अधिकारियों की नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती थी और अधिकतर पद पैतृक रूप से पिता के बाद पुत्र को मिलते थे।[१] बहुत से पदाधिकारी एक ही कुल के होते थे। जयवर्मन् प्रथम के समय के एक लेख[२] में धर्मस्वामी नामक एक विद्वान् ब्राह्मण का उल्लेख है और इसने क्रमशः कई पदों को सुशोभित किया। उसका कनिष्ठ भ्राता भी भिन्न भिन्न पदों पर नियुक्त हुआ था। एक अन्य लेख में भवपुर के प्रान्तीय शासक

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १२०, पृ० ३१०।

२—यही न० ३४, पृ० ४४।

समराधिपतिवर्मन् की पैतृक नियुक्ति का उल्लेख है। अधिकतर पदाधिकारी उन वंशों के लोग होते थे जिनका राज्य से सम्बन्ध था। अन्य पदों पर नियुक्ति भी इसी आधार पर होती थी। एक लेख[१] में वागीश के वंश का उल्लेख है जिसमें १३ सम्राटों के समय में सम्राट् के पीछे मूर्छल डुलाने का पद सुशोभित किया। कुछ चीनी वृत्तान्तों के आधार पर एक फ्रांसीसी विद्वान् रेमूसो ने लिखा है कि केवल राजवंशज ही उच्च पदों पर नियुक्त किये जाते थे और जब योग्य पुरुष नहीं मिलते थे तो उनके स्थान पर स्त्रियों की नियुक्ति होती थी।[२] राजेन्द्रवर्मन् की एक स्त्री प्राणा अपने पति की मृत्यूपरान्त जयवर्मन् के समय में एक उच्च पद पर शोभायमान थी।[३]

इन पदाधिकारियों को सम्राट् के प्रति स्वामि-भक्ति की शपथ लेनी पड़ती थी जिसका उल्लेख हमें लेखों में[४] मिलता है। अग्नि, ब्राह्मणों तथा आचार्यों के सम्मुख शपथ ली जाती थी कि वे अपने स्वामी के अतिरिक्त अन्य किसी नृप के आत्म-समर्पण नहीं करेंगे, अपने सम्राट् के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करेंगे, शत्रु का साथ नहीं देंगे, सम्राट् को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचायेंगे तथा पूर्ण शक्ति से सम्राट् के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे। युद्ध होने पर सम्राट् की ओर से लड़ेंगे और रण-भूमि से नहीं भागेंगे। शान्तिकाल में भी सम्राट् की पूर्णरूप से सेवा करेंगे चाहे इसमें मृत्यु हो

१—वही न० १५७, पृ० ४००।

२—बार्थ और बेरगेन : कम्बुज लेख पृ० १२९।

३—चटर्जी : कम्बुज पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव, पृ० १६४।

४—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १६०, पृ० ४२२, पाद २४।

जावे। सम्राट् के कार्य से यदि बहुत दूर भी भेजा जाय तो उसमें असमर्थता प्रकट नहीं करेंगे और उसकी पूर्णतया पूर्ति करेंगे। यदि वे अपने कर्त्तव्य का पालन न करें तो वे अधिक से अधिक दण्ड के भागी होवें। यदि कर्त्तव्यच्युत होकर वे भागने का प्रयास करें तो उनका जन्म ३२ नरकों में होवे जब तक सूर्य और चन्द्र स्थित हैं। अपना कर्त्तव्य-पालन करने पर सम्राट् की ओर से उनके कुटुम्ब का पालन होवे और उन्हें यथारूप पुरस्कार मिले। इस शपथ की प्रथा अब तक चली आती है।

पदाधिकारियों में सञ्जक श्रेणी के व्यक्ति भी होते थे जो विशेष रूप से सम्राट् के प्रति अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पित कर देते थे। इनमें से वहुतों का उल्लेख लेखों में मिलता है। बन्ते-चमर के एक लेख[१] में लिखा है कि यशोवर्मन् के समय में भरतराहु ने उपद्रव कर राजप्रासाद को घेर लिया। प्रासाद-रक्षक तो भागे किन्तु सञ्जक अर्जुन और सञ्जक श्रीधरदेवपुर ने अपने प्राण देकर सम्राट् की रक्षा की। भरतराहु के विद्रोह दबाने के बाद यशोवर्मन् ने दोनों मृतकों को उपाधियाँ प्रदान कीं और उनकी मूर्तियाँ स्थापित कराईं। श्रीधरदेवपुर के पुत्र सञ्जक देवपुर को भी उपाधि दी गई। अंगकोर वट के चित्रों में भी सञ्जक दिखाये गये हैं। एक वीर युद्धवर्मन् धनुष-बाण लिये खड़ा है, और दूसरा जययुद्धवर्मन् है। पहिले के हाथ में गरुड़ और दूसरे के पास हनुमान की मूर्ति अंकित ध्वजा है।

स्थानीय शासन—स्थानीय शासन से सम्बन्धित ग्रामिक

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १८३ पृ० ५२८ से।

थे। दश ग्रामों का एक प्रधान था जो दशग्राम प्रधान कहलाता था।[१] इनके अतिरिक्त ग्रामवृद्ध अथवा वृद्ध पुरुष[२] भी भूमि की सीमाएँ निर्धारित तथा अन्य कार्यों में सहायता देते थे। राज्य की ओर से भी पदाधिकारी सहायतार्थ होते थे। श्रेष्ठजन पुरुषप्रधान कहलाते थे। व्रह सभा का भी उल्लेख है। यह भूमि की सीमाएँ निर्धारित करती थी।

कानून तथा दण्ड-व्यवस्था—धर्मशास्त्र के आधार पर सिद्धान्त (कानून) बने थे। मृतक-धन के अनुसार सम्राट् उस भूमि का अधिकारी था जिसका स्वामी बिना वंशज के मर गया था।[३] सम्राट् की ओर से प्रजा पर कर लगाया जाता था। सम्राट् को कर कम करने का पूर्ण अधिकार था। कुछ पदाधिकारियों ने भूमि लेकर उसे श्री जय-क्षेत्र देवता को अर्पित कर दी। सम्राट् ने उसका आधा कर दिया। दण्ड-व्यवस्था कठिन थी। कई लेखों में बन्दी करना, कोड़े की सज़ा देना तथा अर्थ दण्ड का उल्लेख है। निर्णय पत्थर पर खुदवाकर प्रकाशित कर दिया जाता था।

कम्बुज लेखों के आधार पर शासन-प्रणाली का केवल सूक्ष्म चित्र खींचा जा सका है। यह प्रत्यक्ष है कि शासन-व्यवस्था सुदृढ़ और सुचारु थी और यह प्राचीन भारतीय शासन-प्रणाली के आधार पर बनाई गई थी जिसमें सम्राट् को देव अंश माना था। उसके अधिकार बहुत थे। इस शासन-व्यवस्था

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १३१ पृ० ३३३।

२—यही, तथा न० १०६ पृ० २८३।

३—यही पुस्तक न० १४६ पृ० ३४२।

में सञ्जक नामक शासन अंग विशेष तथा उल्लेखनीय है। यह शब्द भारतीय अर्थशास्त्र में नहीं मिलता है। पद नियुक्ति के समय की शपथ लेना भी नवीन प्रतीत होती है।

अध्याय २

सामाजिक जीवन

कम्बुज देश का सामाजिक जीवन भारतीय वर्ण-व्यवस्था के आधार पर बना था। भारत से प्रायः प्रत्येक शताब्दी में ब्राह्मण कम्बुज देश गये। वहाँ उनका पूर्णतया आदर-सत्कार हुआ और वे वहीं बस गये। जावा और ब्रह्मा से भी ब्राह्मणों ने इस देश में प्रवेश किया। यह आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि वैश्यों का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है। लेखों में केवल भारत से आये हुँए ब्राह्मणों का ही उल्लेख है। ब्रह्म क्षत्रिय वंश-प्रधान था और ऐसे बहुत से उदाहरण हैं कि ब्राह्मणों और क्षत्रिय राज-वंशजों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो गया था। पर इसके साथ ही साथ वर्ण-व्यवस्था पूर्णतया कम्बुज देश का सामाजिक अंग बन गई थी और वहाँ के राजाओं ने इसको अपनाया। कुछ नई जातियों के बनने का भी उल्लेख है, जो स्वाभाविक है, क्योंकि यहाँ से गये ब्राह्मणों का वहाँ की जनता से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता था। सामाजिक जीवन का अध्ययन करने के लिए हमको निम्न-लिखित विषयों पर विचार करना पड़ेगा—वर्ण-व्यवस्था तथा नवीन जातियों का उत्थान, वैवाहिक प्रथा, वेश-भूषा, खान-पान तथा उसके पात्र, स्त्रियों की अवस्था, आमोद-प्रमोद, दास-प्रथा तथा मृतक संस्कार इत्यादि।

वर्ण-व्यवस्था—कम्बुज लेखों में चारों वर्णों का उल्लेख[१] मिलता है (चत्वारो वर्णाः) पर मुख्यतया ब्राह्मणों का विवरण है। क्षत्रियों के लिए ब्रह्म क्षत्र[२] शब्द का प्रयोग हुआ है। वैश्यों का कहीं भी उल्लेख नहीं है।[३] इस देश में ब्राह्मणों की सत्ता प्रारम्भ से ही स्थापित हो चुकी थी। लेखों में दो कौण्डिन्य ब्राह्मणों का उल्लेख है जिन्होंने भिन्न-भिन्न समय में कम्बुज में पदार्पण किया और वहीं के शासक बन गये। इन्होंने वहीं की राज्ञियों से विवाह कर राज्य-वंश चलाया। इनके अतिरिक्त अन्य ब्राह्मणों का भी उल्लेख है। एक ख्मेर किंवदन्ती[४] के अनुसार जावा देश के ब्राह्मण कम्बुज में आये थे और यहाँ उन्होंने राज्य स्थापित किया। यह ब्राह्मण कृष्ण वर्ण के थे और उनके लम्बे बाल थे। वे वाराणसी के निवासी थे। चीनी किंवदन्ती[५] के अनुसार फ़ूनान के आधीन टुएन-सियन

१—मजुमदार : कम्बुज देश न० १७६, पृ० ४६७, पाद १६।

२—यही : न० ५२, पृ० ५६ ; सम्राट् जयवर्मन् को ब्रह्मकुल वंशज लिखा है; न० ६५ पृ० २६५ पाद १० : प्राह-खो के लेख में पृथ्वीन्द्रवर्मन् को क्षत्री कुलज्ञ लिखा है (श्री पृथ्वीन्द्रवर्म्मननृपतेः क्षत्रान्वयाप्तोद्गतेस) न० ५५, पृ० ६२, पाद ४)। ब्रह्मक्षत्रियों का उल्लेख चम्पा के लेखों में भी है और इस जाति के व्यक्ति भारत में भी हैं। देखिए बंगाल की एशियाटिक सभा पत्रिका (नई तालिका) भाग ५, १६०६, पृ० १६७ से।

३—वैश्यों तथा शूद्रों का उल्लेख चम्पा के लेखों में भी नहीं पाया जाता है। एक लेख में इनका विवरण केवल नाम मात्र के लिए है। (मजुमदार : चम्पा, पृ० २१४)

४—चटर्जी : कम्बुज में भारतीय संस्कृति का प्रभाव : पृ० ८।

५—पिलियों : 'फुनान'–सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३, पृ० २७७।

में भारत से आये हुए १,००० से अधिक ब्राह्मण रहते थे। इस प्रान्त के निवासी उनके सिद्धान्तों को मानते थे, वे इनके साथ अपनी कन्याओं का विवाह कर देते थे। कम्बुज लेखों में भी भारत से आये हुए कई ब्राह्मणों का उल्लेख है। शिव कैवल्य को तान्त्रिक विद्या सिखाने के लिए भारत के एक जनपद से हिरण्यदास नामक ब्राह्मण आया था।[१] इसके बाद अगस्त्य नामक ब्राह्मण आया जिसने कुमारी यशोमती से विवाह किया।[२] बृन्दावन निवासी दिवाकर ब्राह्मण ने सम्राट् राजेन्द्र-वर्मन् की पुत्री इन्द्रलक्ष्मी से विवाह किया था।[३] भारद्वाज गोत्रिय हृषिकेष नरपति देश (ब्रह्मा) से कम्बुज आया था और वह जयवर्मन् सप्तम का राज्य पुरोहित हुआ। उसके मरने पर ब्रह्मपुर की एक कन्या प्रभा से उसने विवाह किया।[४] ब्राह्मणों का राज्य में विशेष स्थान था। शिव-कैवल्य और उसके वंशजों ने २५० वर्ष तक सम्राट् के राज्य-पुरोहित पद को सुशोभित किया। वाम शिव नामक एक ब्राह्मण इन्द्रवर्मन् का गुरु था।[५] एक अन्य ब्राह्मण विदुर्षी तिलका का पुत्र जयवर्मन् षष्ठ के यहाँ राज्य-पण्डित था।[६] अतः यह प्रतीत होता है कि कम्बुज देश के सामाजिक जीवन में ब्राह्मणों का सब से उच्च और श्रेष्ठ स्थान था और राजकुमारियों का विवाह भी विद्वान् ब्राह्मणों के साथ हो जाता था।

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १५२, पृ० ३६२।
२—यही : न० ६०, पृ० ७६, पाद ५।
३—यही न० १११, पृ० २८५।
४—यही न० १६०, पृ० ५४१।
५—यही न० १५२, पृ० ३६६।
६—यही न० १७३, पृ० ४४०।

सूर्यवर्मन् के समय में जातियों का विभाजन हुआ[१] और शिवाचार्य को सब से श्रेष्ठ जातीय स्थान दिया। इधर तो ब्राह्मणों का श्रेष्ठ स्थान था, पर लेख से ज्ञात होता है कि जाति और व्यवसाय का कोई सम्बन्ध न था और बहुत से ब्राह्मण जाति के पुरुष हस्तिवाहक तथा कारुक का कार्य करते थे और स्त्रियाँ राज्य गणिका थीं।[२] कुछ नवीन जातियों की उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि जयवर्मन् पंचम के समय दो नवीन जातियों (वर्ण) रमुक और कर्मान्तर—की उत्पत्ति हुई थी। इसी लेख में सात जातियों (सप्त वर्णों) का उल्लेख मिलता है।[३] इस सम्बन्ध में हमें अरबी इतिहासकार, मुख्यतया इबन खुरदाद के वृत्तान्त में भी सप्त जातियों का विवरण मिलता है।[४] कम्बुज के लेख में लिखा है कि सम्राट् ने सात जातियों के आचार्यों से नवीन जातियों में

१—मजुमदार कम्बुज लेख पृ० ३५३।

२—यही न० १५८, पृ० ४१०। स्मृतियों में लिखा है कि आपत्काल में मनुष्य अपने जाति-व्यवसाय को छोड़कर अन्य कार्य भी कर सकता है। (देखिये गौतम ७ अध्याय : मनु १०। ८१; याज्ञवल्क्य ३। ३५)। उत्तर मध्यकालीन भारत के लेखों में भी ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं जैसे क्षत्री कृषक, क्षत्री तैलिक (एपीग्राफिया इण्डिका भाग १, पृ० १४९ से) ब्राह्मण कृषक (देखिये कामन का लेख)।

३—कम्बुज लेख न० ११०, अ पृ० ५८९।

४—इलियट और डासन : भारतवर्ष का उसके इतिहासकारों द्वारा इतिहास। भाग १, पृ० १६-१७ : ७४-९३। इन सात जातियों के निम्नलिखित नाम हैं—सबकुतुरिया, बृह्मिन, कतरिया, सुदरिया, वैसूर, सन्डलिया तथा लाहुड।

प्रत्येक से २० व्यक्तियों को चुनने को कहा। यह इन जातियों के मूल सदस्य हुए। इन जातियों में विद्या, शील तथा आचार से सम्पन्न व्यक्ति आचार्य होम तथा आचार्य-चतुराचार्य-प्रधान पदों पर नियुक्त हो सकते थे। इन नवीन जातियों की कन्यायें उच्च जाति के पुरुषों को दी जा सकती थीं किन्तु हीन जाति से उनका वैवाहिक सम्पर्क नहीं स्थापित हो सकता था। सम्राट् जयवर्मन् ने इन दोनों जातियों के निर्माण की सम्मति दे दी।[1] अंगकोर बाट के चित्रों में भी ब्राह्मण तथा अन्य जाति के व्यक्ति प्रदर्शित किये गये हैं। एक चित्र में ब्राह्मण को लम्बे-लम्बे बाल तथा कानों में बाले पहने दिखाये गये हैं। राजहोता का पालकी में ले जाता हुआ एक चित्र अंकित है। इसमें भी उनके कानों में कुण्डल दिखाये गये हैं।

इनके अतिरिक्त कम्बुज में कुछ अन्य व्यक्ति भी थे जिनके नामों से प्रतीत होता है कि वे भारतीय और कम्बुज देश वासियों की मिश्रित सन्तान थे। एक लेख में[2] आचार्य त्रिभुवन राज के त्रैलोक्य नाथ की मूर्ति स्थापना का उल्लेख है, इसकी कनिष्ठ भगिनी तेनवे थी जो सोमवज्ञ को व्याही थी। ऐसे बहुत से नाम मिलते हैं—जैसे लोञ युधिष्ठिर, मृताञ जयेन्द्रपण्डित, मृताञ पृथ्वीन्द्र पण्डित इत्यादि।

वैवाहिक सम्बन्ध—लेखों से प्रतीत होता है कि ब्राह्मणों को इस सम्बन्ध में स्वतन्त्रता थी और वे जहाँ चाहें विवाह

१—देखिये जयवर्मन् का ८९६ सं० का लेख जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है (न० १४)।

२—मजुमदार : कम्बुज लेख, न० ११३, पृ० २९९।

कर सकते थे। जिन क्षत्रियों ने ब्राह्मणों की कन्यायें लीं थीं वे राज्यवंशीय थे। क्षत्रिय सम्राट् भववर्मन् की भगिनी का विवाह ब्राह्मण सोमशर्मन् के साथ हुआ था। इस देवी की पतिव्रता और धर्मरता होने के कारण अरुन्धती से तुलना की गई है।[१] यशोवर्मन् की माँ इन्द्रदेवी अगस्त्य नामक ब्राह्मण की वंशज थी जो वेद-वेदान्तों में पारंगत था और आर्य देश से कम्बुज आया था। परमेश्वर जयवर्मन् द्वितीय का विवाह एक ब्राह्मण कन्या भास्स्वामिनी से हुआ था[२] और योगिश्वर पण्डित नामक विद्वान् उन्हीं का वंशज था। नरपति देश (ब्रह्मदेश) से आगन्तुक एक ब्राह्मण हृषिकेश ने जयवर्मन् सप्तम की मृत्यु के पश्चात् श्री प्रभा नामक एक कन्या से विवाह किया था और उसकी छोटी बहिन जयवर्मन् अष्टम की सम्राज्ञी थी। जयवर्मन् सप्तम की भी दोनों रानियाँ ब्राह्मण जाति की थीं।[३] यशोवर्मन् के पिता ने अपने मामा की लड़की के साथ विवाह कर लिया था। यह प्रथा आर्य सभ्यता के विपरीत है। यद्यपि दक्षिण भारत में अब भी ऐसा होता है। वैवाहिक सम्बन्ध प्रायः पिता अथवा पितामह ही बाँधते थे किन्तु एक लेख में लिखा है कि मृताञ्श्री सर्वाधिकार की पौत्री मेसोक स्वयं अथवा विवाह-प्रस्ताव लेखक के सम्मुख ले गई और उसने सामान सहित एक घोड़ा प्रदान किया। फिर भी यह प्रतीत होता है कि कन्या के पितामह और वर के पिता

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १३, पृ० १६।
पतिव्रता धर्म्मरता द्वितीयारुन्धतीव या।

२—यही न० १४८, पृ० ३५१।

३—यही न० १८२, पृ० ५१५।

श्री गुण पण्डित ने इस सम्बन्ध स्थापित करने के लिए बातचीत की होगी।[१] बहु विवाह प्रथा भी रही होगी यद्यपि इसके उदाहरण नहीं मिलते हैं। एक लेख में ४३ पुरुष दास और उनकी ६ स्त्रियों का उल्लेख है।[२] इससे ज्ञात होता है कि दासों और नीच जातियों में स्त्री के बहुत से पतियों की प्रथा स्थापित रही होगी। 'सुई वंश के इतिहास[३]' में कम्बुज देश की सप्तमी शताब्दी के सामाजिक जीवन का कुछ विवरण मिलता है। इस ग्रन्थ में लिखा है कि कन्या को एक सुन्दर पट दिया जाता था, और वर कन्या वंश के लोग ८ दिन तक एक साथ रहते थे। इस काल में दिन-रात दीपक जला करता था। विवाह के पश्चात् वर अपने पिता की संपत्ति से कुछ भाग लेकर अपनी स्त्री के साथ अलग रहता था। विधवा-विवाह के सम्बन्ध में एक अप्रकाशित लेख[४] में लिखा है कि हिरण्यवर्मन् के तीन पुत्रों में सब से कनिष्ठ युवराज की मृत्यु के पश्चात् उसकी स्त्री विजयेन्द्रलक्ष्मी क्रमशः दोनों बड़े भाइयों की स्त्री हुई। यह विचित्र प्रतीत होता है कि छोटे भाई की पत्नी के साथ बड़े भाइयों का विवाह हो।

वेश, भूषा तथा शृंगार—कम्बुज देश की वेश-भूषा के विषय में लेखों के अतिरिक्त अंगकोर के चित्रों तथा कुछ चीनी वृत्तान्तों से विवरण प्राप्त होता है। वस्त्रों तथा आभूषणों के आधार पर ही किसी जाति की सामाजिक स्थिति समझी जा

१— मजुमदार : कम्बुज लेख न० ६६ अ।

२—यही न० २३, पृ० २६।

३—मजुमदार : कम्बुज देश, पृ० ६५।

४—यही : कम्बुज लेख, न० १७४, पृ० ४५६।

सकती है। इस क्षेत्र में भी भारतीय धोती ने कम्बुज देश में अपनी गहरी छाप डाल दी। चित्रों से प्रतीत होता है कि यह भारतीय व्यक्ति है। अंगकोर में पुरुष धोती पहिने दिखाये गये हैं और धोती के ऊपर एक पेटी बाँधी जाती थी जिसके दोनों किनारे खुले रहते थे। कभी एक से अधिक पेटी का भी प्रयोग होता था। धोती का उल्लेख चीनी ग्रन्थकारों ने भी किया है। 'चेओ-टा-कुअन[१] की कथा' में लिखा है कि केवल धोती का प्रयोग होता था किन्तु बाहर जाते समय ऊपर एक डोपट्टा भी डाल लिया जाता था। वेयान के एक चित्र में सम्राट् को धोती पहिने दिखाया गया है और वे हार भी पहिने हैं। चीनी ग्रन्थकार के अनुसार धोती बड़े सुन्दर कपड़े की होती थी और यह कपड़ा पश्चिमी समुद्र से आता था। एक लेख में चीन से आये रेशम (चीनांशुक) का उल्लेख है।[२] १६वीं शताब्दी के रमुसियों के वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि बंगाल की मलमल की वहाँ बड़ी माँग थी।[३] पहिले समय में भी जंड़ी तथा सुनहरे काम के वस्त्र बनते थे जैसा 'दक्षिण केत्सी के इतिहास' नामक ग्रन्थ में लिखा है। 'सुई वंश के इतिहास' में लिखा है कि सम्राट् बैंगनी रंग के रेशम के कपड़े पहिनता था जिस पर सुनहरा काम बना होता था। इसके मुकुट में मणि-मुक्ता लगे होते थे और उसके जूते भी कामदार थे।[४] अंगकोर में राज-

---

१—पिलियो : 'फूनान'—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३, पृ० २६६।

२—मजुमदार : कम्बुज लेख : न० १७७, पृ० ४६६, पाद ४४—
चीनांशुकमया : पञ्चचत्वारिंशत्पटा अपि।

३—चटर्जी : कम्बुज में भारतीय संस्कृति का प्रभाव, पृ० २२६।

४—पिलियो : 'फूनान'—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३, पृ० २५४।

होता की पालकी में ले जाते हुए दिखाया गया है। वे बहुत छोटी धोती पहिने हैं और उस पर दो परत की पेटी बँधी है। ब्राह्मण जनेऊ पहिने दिखाये गये हैं। ता-प्रोम के लेख में शटिका (लहँगा) तथा कम्बुज का उल्लेख[१] है।

भारत की भाँति कम्बुज में भी पुरुष तथा स्त्रियाँ दोनों आभूषण धारण करते थे। लेखों[२] में हार, कर्णाभूषण, छल्ले, कंगन तथा बाजूबन्दों का उल्लेख है। चित्रों से प्रतीत होता है कि कमर की करधनी का प्रयोग होता था। पुरुष केवल हार पहिनते थे। 'चेग्रो टा-कुग्रन की कथा' में लिखा है कि सम्राट् मुक्ता की बड़ी माला, मणि जड़े कंगन और नूपुर पहिनता था। वह नंगे पैर बाहर जाता था और उसके पैर के तलुवे तथा हथेलियाँ लाल रंगी होती थीं। पुरुषों में रंगने की प्रथा नहीं थी और केवल स्त्रियाँ ही अपने हाथ-पैर में रंग लगाती थीं। इससे मेंहदी तथा अलता लगाने का संकेत मिलता है। पत्थर पर अंकित वयोन में मिले एक चित्र में सम्राट् को केवल हार पहिने दिखाया गया है। कर्णाभूषण भी पहिने जाते थे। 'सुई वंश के इतिहास' में लिखा है कि स्त्रियों की भाँति सम्राट् कर्णाभूषण पहिनता था जिससे उसका संकेत कुण्डल से रहा होगा। अंगकोर में चित्रित राजहोता भी कुण्डल पहिने दिखाये गये हैं, किन्तु योद्धाजन यह नहीं पहिने हैं यद्यपि उनके कानों में कुण्डल पहिनने के लिए छेद बने हुए हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक आभूषणों का प्रयोग

१—मजुमदार : कम्बुज लेख, न० १७७, पृ० ४७०; पाद ६१।
२—यही : न० १५२, पृ० ३६६ : न० १६०, पृ० ४२०।

करती थीं। टुरैन के संग्रहालय में प्रसिद्ध नर्तकों की मूर्ति[1] से ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ लटकते हुए कर्ण-फूल, मुक्ता का हार, कंगन, बाजूबन्द तथा लटकती हुई मोतियों की करधनी पहिनती थीं। इस नर्तकी के शीश पर मणिमुक्ता से आभूषित एक मुकुट है। शृंगार के लिए दर्पण का प्रयोग होता था।[2] लेखों में चाँदी की मूठ लगे दर्पण का उल्लेख है। चीनी वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ अपने हाथ तथा पैर रंगती थीं। इसके लिए मेंहदी लगाई जाती होगी। वे अपने बाल सँवार कर ऊपर चूड़ा बाँधती थीं। इसके लिए कंधे का भी प्रयोग होता होगा यद्यपि लेखों में इसका कहीं उल्लेख नहीं आया है। ता-प्रोम के लेख[3] से ज्ञात होता है कि चन्दन का प्रयोग होता था जिसका विलेपन शृंगार के लिए आवश्यक था।

भोजन सामग्री तथा भाजन—लेखों से एक बात विशेष रूप से प्रतीत होती है। उस समय में भी कम्बुज देश में धान्य की उपज बहुत होती होगी और यहाँ के निवासियों का यही मुख्य भोजन था। इन लेखों में सत्त अथवा गेहूँ का कहीं भी

१—ग्रूसे। सुदूरपूर्व का इतिहास—पृ० ५७०, चित्र न० ३९।

एक चीनी ग्रन्थ के अनुसार पश्चिमी भारत से फूनान आये हुए एक जहाज पर एक बड़ा स्फटिक का शीशा था जिसका व्यास कोई १६ फीट ५ इंच था और यह ४० पौंड से अधिक भारी था (पिलियो फूनान, पृ० २८३)

२—चन्दनस्य द्विकट्टयौ च त्रिपणश्च त्रिपादकाः।
कस्तूरिकाः पणौ माषौ षड् बिम्बान्यथ तैलकम्॥

३—मजुमदार : कम्बुज लेख, न० १७७ पृ० ४७१, पाद १०१।

उल्लेख नहीं है। तण्डुल का ही भोजन बनता था (भोजन तण्डुलानां)।[१] यह उबालकर खाया जाता था (पाक्य तण्डुल)। भोजन में खार्य्य, भक्त, तण्डुल तथा धान्य विशेष थे। ता-प्रोम के लेख में भोजन-सामग्री का विशेषरूप से उल्लेख है।[२] इससे ज्ञात होता है कि इस समय खार्य्य, तण्डुल, मुद्ग (दाल), कंकु (एक प्रकार का बीज), घी, दही, मधु, गुड़, तरुफ़ल, फलशाक इत्यादि का उपभोग होता था। एक अन्य लेख[३] में शुद्ध मक्खन का उल्लेख है। अन्त में व्यञ्जन के लिए नमक जीरा तथा इलायची डाली जाती थी। अदरक, तेल तथा मधु का भी प्रयोग होता था।[४] भोजन पात्रों में घट, कढाई, कलश, शराब प्रमुख थे। बड़े-बड़े चाँदी के कलसों का भी विवरण मिलता है और सोने तथा चाँदी की थालियाँ भी बनती थीं।[५] सप्तम शताब्दी के 'ताँग वंश के इतिहास' में भी इस विषय में कुछ विवरण मिलता है।[६] दूसरे ग्रन्थ में लिखा है कि उनका भोजन मक्खन, मलाई, शक्कर तथा जुआर के अपूप अथवा रोटी का होता था। भोजन से पहिले वे भुने हुए मांस को रोटी के साथ नमक लगाकर खाते थे। 'ताँग वंश के इतिहास' में लिखा है कि कम्बुज निवासियों के मकान पूर्व

१—मजुमदार : कम्बुज लेख : न० १११, पृ० २९०, पाद २६।

२—यही पृ० ४७१।

३—यही न० १०१, पृ० ५८७।

४—यही न० १७७, पृ० ४६६।

५—यही न० ६६, पृ० १२५, तथा पृ० ५८४।

६—पिलियो : 'फूनान'-सुदूरपूर्व पत्रिका; मजुमदार : कम्बुज देश, पृ० ६५।

की ओर होते थे, वे अपने अतिथियों का स्वागत धूप, कपूर तथा गंध से करते थे। वे अपनी स्त्रियों सहित खान पान करते थे।

आमोद-प्रमोद—सामाजिक जीवन में आमोद-प्रमोद की पूर्ण व्यवस्था थी। लेखों में नृत्य, गान तथा नाटक प्रदर्शन का उल्लेख है। नर्तकी, गायन और वाद्य संगीत में परिपूर्ण होती थी। वे वेणु ताल विशारद थीं। स्वर और ताल का उन्हें पूर्ण ज्ञान था।[१] मन्दिरों में गायन वादन के लिए नट-नर्तकियों को भी अर्पित कर दिया जाता था। एक लेख में[२] लिखा है कि ७ नर्तकियाँ और ११ गायन विद्या में प्रवीण लड़कियाँ एक मन्दिर में रहती थीं। स्त्रियों के अतिरिक्त पुरुष भी इस विद्या में निपुण होते थे। एक अन्य लेख में सुन्दर सुसज्जित नृत्यकला तथा उससे सम्बन्धित अन्य कलाओं में निपुण पुरुषों का उल्लेख है।[३] इसी प्रकार एक अन्य लेख[४] में एक प्रवीण गायक के विषय में लिखा है जिसका पिता जयवर्मन्, धरणीन्द्रवर्मन् प्रथम तथा सूर्यवर्मन् द्वितीय के समय में एक उच्च पदाधिकारी था। गायन तथा नृत्य के अतिरिक्त वाद्य संगीत भी प्रचलित था और लेखों में कई प्रकार के वाद्यों का विवरण मिलता है, जैसे वेणु, वीणा, कन्जन (खन्जरी), मृदंग,

१—मजुमदार : कम्बुज लेख, न० ५५, पृ० ६४, पाद ३५।
वीणादिवाद्यवादिन्यः वेणुतालविशारदाः

२—यही, पृ० ५५६।

३—यही, न० ५५, पृ० ६४, पाद ३६।
पुरुषा रूपिणाश् श्लाघ्या नर्तनादिविशारदाः।

४—यही न० १८०, पृ० ५०३।

पणव, भेरी तथा काहल। इनके अतिरिक्त नाटक भी खेले जाते थे।[१] एक लेख में जातकों से उद्धृत नाटक के खेलने का उल्लेख है। जयवर्मन् पञ्चम के गुरु यज्ञवराह के विषय में लिखा है कि अपने देश में उसने छोटी-छोटी कहानियाँ लिखना आरम्भ किया तथा विविध भाषा ज्ञानी तथा लिपिज्ञ होने के नाते इसने नाटक भी लिखे।[२] इनके अतिरिक्त आमोद-प्रमोद के और भी साधन थे। एक लेख में मुष्टि युद्ध[३] का उल्लेख है, तथा वसन्त ऋतु को मनाने के लिए विशेष रूप से आयोजन किया जाता था। इसमें नर्तक-नर्तकियों का नृत्य होता है।

पारिवारिक जीवन तथा स्त्रियों का स्थान—पारिवारिक जीवन में स्त्रियों का विशेष स्थान था। लेखों से प्रतीत होता है कि कम्बुज देश की सभ्यता में मातृ का उच्च स्थान था। बहुत से लेखों में मातृ की ओर से वंशज चलना लिखा है किन्तु पिता के बाद पुत्र को स्थान मिलता है। पैतृक नियुक्तियों में पिता के स्थान पर पुत्र ही पद सुशोभित करता था। संभवतः भारतीय संस्कृति के आधार पर समाज निर्माण में कुल प्रधान पुरुष ही होते थे किन्तु देशीय सभ्यता में मातृ का स्थान ऊँचा रहा होगा इसलिए लेखों में लड़कियों को भी पुत्र की भाँति वंशावली में स्थान दिया गया है और उनकी लड़की

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १८२, पृ० ५१७।

२—यही न० १०२ पृ०, २७४।

आख्यायिकाकृतिरभूत् स्वदेशे यदुपक्रमम्।
नानाभाषितलिपिज्ञाश्च प्रयोक्ता नाटकस्य यः ।। पाद २१।।

३—यही न० १००, पृ० ५८४।

की लड़की तथा कई अन्य पीढ़ियों तक वंशावली उल्लिखित है। विवाहपर्यन्त कन्या का गोत्र बदल जाना चाहिये किन्तु गोत्रों का विशेष उल्लेख नहीं मिलता है। एक लेख में पितृ-तर्पण का विवरण मिलता है।[१] यह पुत्र द्वारा ही दिया जाता था। वृद्ध का परिवार में यथा पूज्य स्थान था। एक लेख में लिखा[२] है कि वृद्ध के दाँत सुरक्षित रहने की प्रथा थी। इसका विशेष महत्व नहीं प्रतीत होता है, यह हो सकता है कि लोगों में यह धारणा रही हो कि ऐसा करने से वृद्ध पुरुष की बुद्धि परिवार में चिरतः रहे। लेखों में स्त्रियों की ओर से भी बहुत से दानों का उल्लेख है किन्तु मुख्यतया यह पुरुषों की ओर से ही होते थे।

दास-प्रथा:—कम्बुज देश में दास प्रथा पूर्णतया प्रचलित थी। प्रायः दास दत्तक होते थे किन्तु विजय पर्यन्त जीते हुए देशों से दास-दासी लाये जाते थे। सभी दान पत्रों में मन्दिरों को दास दासियाँ अर्पित की गई हैं। इनमें वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित हो जाता था और एक दासी के कई पति होते थे। एक लेख में[३] ४२ दास और उनकी ९ स्त्रियों का उल्लेख है। इनके वच्चों का फी विवरण मिलता है। इन दासों के स्वामी इनके द्वारा उपज के पूर्णतया अधिकारी थे। दासों के शरीर

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० ३० पृ० ४१ पाद २३।
पितृंश्चातर्पयत् तोयैस्सत्पुत्रकरनिस्सृतैः

२—यही न० ४९, पृ ५५।
इह्लिंगप्रतिष्ठातुर्मोजस्याशीतिवर्षिणः
त्रिशूलमूले निहिता दंष्ट्रास्ता या मुखच्युताः।।

३—यही न० २३, पृ० २९।

तथा उनके उत्पादित पदार्थों पर स्वामी का पूर्ण अधिकार रहता था। दास कहीं भागकर नहीं जा सकते थे। यदि ऐसा करने का प्रयास करें, तो पकड़ने पर उनके नाक-कान काट लिये जाते थे।[१]

शव संस्कार—शव संस्कार के विषय में चीनी वृत्तान्तों से ज्ञात होता है कि चार प्रकार से दाह-संस्कार किया जाता था--शव को जलाकर, नदी में प्रवाह कर, भूमि में गाड़कर तथा पहाड़ पर छोड़कर जिससे पशु-पक्षी उसे खा सकें। प्रायः शव-दाह प्रथा अधिक प्रचलित थी। 'सुई वंश के इतिहास' से ज्ञात[२] होता है कि शव जलाकर एक सोने के अथवा चाँदी के पात्र में राख रख दी जाती थी और फिर जल में वह राख फेंक दी जाती थी। निर्धन व्यक्ति रंग-बिरंगे मिट्टी के पात्रों में राख रखते थे। मृत्यु के पश्चात् मृतक के वंशज सिर तथा दाढ़ी के बाल बनवा डालते थे और सात दिन तक वे रुदन करते थे।

कम्बुज देश का सामाजिक जीवन भारतीय रंग में रंगा हुआ था। इसके प्रत्येक अंग पर भारतीय सांस्कृतिक छाप पड़ी हुई थी। वर्ण-व्यवस्था पूर्णतया प्रचलित थी। ब्राह्मणों का समाज में श्रेष्ठ स्थान था और कम्बुज सम्राट् जयवर्मन् के समय के प्रथम लेख में ब्राह्मणों के स्थान कुम्भ नगर का उल्लेख है। ब्राह्मणों का राज्य-वंश के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। अन्तर्जातीय विवाह केवल राज्य ब्राह्मण और क्षत्रिय राजवंशों में हो जाया करता था। इसी आधार पर

१—मजुमदार : कम्बुज लेख पृष्ठ ५८२।

२—पिलियो : सुदूर पूर्व पत्रिका, भाग ३, पृष्ठ २६८।

ब्राह्मण क्षत्रिय वंश का उल्लेख मिलता है। कम्बुज लेखों में वैश्यों का कहीं उल्लेख नहीं है, किन्तु फ़ुनान के आधीन टुवेन-सियन प्रान्त में कोई ५०० (वणिक् अथवा व्यापारी) परिवार थे। इनके अतिरिक्त २०० फो-त् (कदाचित् बौद्ध) और १००० से अधिक ब्राह्मण थे। इन ब्राह्मणों को वहाँ के निवासी अपनी कन्यायें दे देते थे। सामाजिक क्षेत्र में विवाह-प्रथा के अतिरिक्त वेष तथा स्त्रियों के परिवार में स्थान सम्बन्धी विषयों पर भी विचार किया गया। वहाँ के देश-वासियों की वेष-भूषा भारतीय धोती तथा लहँगा थी और डुपट्टे का भी प्रयोग किया जाता था। यद्यपि मातृ का परिवार में उच्च स्थान था पर लेखों से पैतृकाधिकार ही प्रतीत होता है। कुछ लेखों में कन्या द्वारा वंश चलाने का उल्लेख भी मिलता है। इस देश का भोजन विशेषतया तण्डुल, मुद्ग, घृत, मधु इत्यादि ही था। गेहूँ का उल्लेख नहीं मिलता है, चावल ही विशेष रूप से भोजन होता था। अन्त में दास-प्रथा पर भी प्रकाश डाला गया। प्राचीन काल में भारतवर्ष में भी यह प्रथा थी और मनु ने इसका उल्लेख किया है। लेखों तथा पत्थर पर अंकित चित्रों से तो यही प्रतीत होता है कि हम भारत के किसी युग की संस्कृति का अध्ययन कर रहे हैं।

अध्याय ३

आर्थिक जीवन

परिपूर्ण तथा सम्पन्न आर्थिक जीवनावस्था के लिए यह अति आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी कांक्षाओं को पूरा कर सके। सभ्यता का विकास आर्थिक परिपाटी के आधार पर ही होता है। वह जाति असभ्य है जिसका अन्य जातियों से सम्पर्क न स्थापित हुआ हो, जिसकी आवश्यकताएँ कम हों क्योंकि उनकी पूर्ति के साधन न हों, तथा जहाँ विनिमय में मुद्रा का स्थान न हो। भारतीय संस्कृति ने स्वतः कम्बुज देश की आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन कर दिया। देश में जीविकोपार्जन के बहुत से व्यवसाय थे, तथा यहाँ विदेश से व्यापार आरम्भ हो गया था। भारतीय पहिले यहाँ व्यापारी के रूप में आये होंगे। लेखों में थोड़ी-सी सामग्री मिलती है जिसके आधार पर खेती तथा पशु-पालन, व्यवसाय तथा उनका संगठन, अनुपात-तौल-नाप, व्यापार, बिक्री-व्यवस्था, मुद्रा तथा राष्ट्र सम्पत्ति इत्यादि विषयों पर हम विवेचना करेंगे।

खेती तथा पशु-पालन—कम्बुज देश अपनी भौगोलिक स्थिति तथा मेकाँग और मीनाम नदियों के अन्तराल में होने के कारण चावल उत्पादन का बड़ा देश रहा है। यहाँ पानी खूब बरसता है, अतः धान की अच्छी उपज होती है। लेखों में केवल चावल के खेतों का उल्लेख मिलता है। खाने के पदार्थों में मुद्ग तथा तिल की भी खेती होती थी। एक लेख

में धान्न के खेतों तथा उद्यानों के खरीदने का उल्लेख है।[१] ग्राहक को विनिमय में, धातुग्रों के बने पदार्थ, एक हाथी, एक घोड़ा, कुछ कपड़े तथा चावल देने पड़े। खेती करने वाला कृषीबल कहलाता था। दास कृषीबल[२] ग्रपने स्वामी की ग्रोर से खेती करते थे ग्रौर उनकी उपज पर स्वामी का पूर्ण ग्रधिकार रहता था। खेती के साथ-साथ पशु-पालन का भी उल्लेख मिलता है। ग्रधिकतर गायें तथा भैंसें पाली जाती थीं।[३] घृत, मक्खन ग्रौर दुग्ध का बहुत उपयोग होता था। ग्रतः पशु-पालन ग्रावश्यक था।

व्यवसाय—खेती तथा पशु-पालन के ग्रतिरिक्त बहुत से व्यवसायों का उल्लेख मिलता है। कुछ लेखों में कई व्यवसायों के संगठन की भी चर्चा है।[४] इनमें शिल्पी[५] का उल्लेख कई

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १४५, पृ० ३४७ : धान्य के खेतों का ग्रन्य लेखों में भी उल्लेख है (देखिये—न० २३, पृ० २९; न० ११३, पृ० २९९)।

२—यही न० ६६, पृ० १२६, पाद १०२। फांग-हुग्रान द्वारा लिखित चीन-वंश के इतिहास में यहाँ के विषय में लिखा है कि लोग खेती करते थे। वे एक वर्ष बोनी करते थे ग्रौर तीन वर्ष तक फसल काटते थे। (पिलियो : सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३, पृ० २५४)

३—मजुमदार : कम्बुज लेख न० ११३, पृ० २९९।

४—जयवर्मन् के प्राह-खो के लेख में (न० १२६, पृ० ३२१, पाद १६) चामीकरकार वर्ण का उल्लेख है जो सुवर्णकार का पर्यायवाची शब्द है। भारतीय साहित्य में सुवर्णकार श्रेणी का विवरण मिलता है (महावस्तु, भाग ३, पृ० ४४२ : बृहस्पति : स्मृति १५, २१, २५)। कम्बुज देश के एक ग्रन्य लेख में श्रेष्ठपुर विषय के कर्म्मकार संघ का उल्लेख है (मजुमदार : कम्बुज लेख नं० १७१, पृ० ४३७)।

५—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १५८, पृ० ४१५, पाद ३७; न० १९२, पृ० ५५७।

लेखों में मिलता है। इस शब्द से भिन्न-भिन्न कलाकारों को सम्बोधित किया जा सकता है। शिल्पी प्रायः बर्तन इत्यादि बनाते थे। मकान बनाने वाले स्थापकाचार्य[1] कहलाते थे। यह संस्कृत शब्द है जिसका अपभ्रंश थवई है और आज भी मकान बनाने वाले कारीगरों को इसी नाम से संकेत किया जाता है। सोने का काम बनाने वाले अथवा सुनारों को कम्बुज के एक लेख में चामीकरकार[2] लिखा है और उनकी एक अपनी संस्था थी जो वर्ण कहलाती थी। सोना तथा सोने के आभूषणों का बहुत से लेखों में उल्लेख है और चित्रों में भी पुरुष तथा स्त्रियाँ आभूषण पहने दिखाये गए हैं; अतः इनकी बड़ी माँग थी। इन व्यवसायियों के वर्ण की समानता भारतीय लेखों में मिले गण अथवा श्रेणी शब्द से की जा सकती है। यह प्रतीत होता है कि एक ही व्यवसाय करने वालों ने अपनी संस्था बना ली होगी। एक अन्य लेख में जयवर्मन् सप्तम के समय में संस्था के अध्यक्ष त्रिपटाक का उल्लेख है जिसने ईश्वरपुर में त्रिभुवन महेश्वर की शक्ति पूजार्थ एक बन मोल लिया था।[3] यह लेख ख्मेर में है और यह नहीं कहा जा सकता कि किस व्यवसायों की संस्था का यह श्रेष्ठ था। एक अन्य लेख में भद्रेश्वरास्पद के विषय के कर्मकारों के संघ अथवा संस्था का उल्लेख है।[4]

इनके अतिरिक्त कई अन्य व्यवसाय के पुरुषों का भी

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १६२, पृ० ५५७।
२—यही न० १२६, पृ० ३२१, पाद १६।
३—यही न० १८७, पृ० ५३२।
४—यही न० १७१, पृ० ४३७।

नाम लेखों में मिलता है। एक लेख से यह प्रतीत होता है कि जाति और व्यवसाय का कोई सम्बन्ध नहीं था और ब्राह्मण वर्ग के व्यक्ति हाथी को हँकाने वाले (महावत), शिल्पी तथा कर्मकार भी थे।[1] कुछ ब्राह्मण होता (होतृ) और पुरोहित भी थे। ब्राह्मणी राज्य गणिकायें भी थीं। ज्योतिषशास्त्र जानने वाले होरा कहलाते थे।[2] एक लेख में उन भाटों का भी उल्लेख आया था जो जापात्र कहलाते थे।[3] राज्य पुरोहितों का विशेष सम्मान था और एक वंश ने तो कोई २०० वर्ष से ऊपर उस पद को सुशोभित किया।[4] जुलाहे अथवा तन्तुवायों[5] का भी विवरण है। यह कपड़ा बुनकर ग्रामों से बेचने के लिए आते हैं। क्षुरक[6] अथवा नाई का अलग व्यवसाय था और आश्रमों से इसका भी सम्बन्ध रहता है। कुछ अन्य वस्तुओं के प्रयोग से यह प्रतीत होता है कि उनको बनाने वालों के भी भिन्न व्यवसाय थे। गन्धिक का कहीं उल्लेख नहीं है किन्तु गन्ध पदार्थों का प्रयोग अवश्य होता था।[7] फूल इत्यादि लाने के लिए मालिन अथवा

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १५८, पृ० ४११।

२—यही न० १६२, पृ० ५५७।

३— यही।

४— देखिये, शिव कैवल्य के वंश का इतिहास—स्टो काक का लेख—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १५२, पृ० ३६२।

५—यही न० १७७, पृ० ४६८, पाद ५८।

६—यही न० ६६, पृ० १२६, पाद १०२।

७—यही न०१६१, पृ० ४२५।

मालाकार का भी उल्लेख[१] एक लेख में मिलता है। यद्यपि कम्बुज लेखों में सम्पूर्ण आर्थिक व्यवसायों का विवरण नहीं है तथापि कुछ शब्दों के आधार पर हम केवल इन पर प्रकाश डालते हैं।

अनुपात—तौल-नाप—इस विषय में हमको लेखों से विशेष सामग्री प्राप्त होती है। इनमें जितने बाटों का उल्लेख है वे सब भारतीय हैं और यहाँ के लेखों तथा ग्रन्थों में उनका पूर्णतया विवरण मिलता है। तौल के बाटों में खारिका,[२] द्रोण,[३] प्रस्थ[४] तथा कुडव[५] का उल्लेख मिलता है। कुडव तौल का सब से छोटा बाट होता है और यह एक पाव के बराबर था। प्रस्थ एक सेर के लगभग था। आढ़क का उल्लेख हमें लेखों में नहीं मिलता है, पर कदाचित् यह भी काम में लाया जाता होगा और यह ४ सेर का बाट था। १६ सेर के बाट को द्रोण कहते थे और सबसे बड़ा बाट खारिका था जो २५६ सेर अथवा ३ बुशल था। एक लेख[६] में १½ खारिका तण्डुल का उल्लेख मिलता है। कई

१—इस लेख में मध्यदेशा नामक मालिनी का उल्लेख है। नाम के आधार पर यह कहना कठिन होगा कि वह भारतवर्ष के मध्यदेश से यहाँ आई होगी। न० १३१, पृ० ६०७।

२—यही न० ६६, पृ० १२५, पाद ८४।

३—यही न० १२५, पृ० ३१६, पाद १२।

४—यही, तथा न० १२५।

५—यही न० १७७, पृ० ४६६, पाद ४१।

६—यही न० ६६, पृ० १२५।

अन्य लेखों में अर्द्ध प्रस्थक तण्डुल,[१] तथा द्रोण तण्डुल[२] का दान लिखा है। काक[३] नामक एक और बाट होता था किन्तु इसके ठीक अनुपात का ज्ञान नहीं है। इनके अतिरिक्त पाद,[४] घाटी,[५] तुला,[६] पण[७] तथा सीस[८] का भी प्रयोग होता था। पाद का अनुपात माखन, दधि तथा मधु के सम्बन्ध में होता था। एक पाद १५० ग्रेन का होता था। घृत को तौलने के लिए कुम्हार की हांडी का प्रयोग होता था जिसे घटी कहते हैं। यह विशेष नाप की होती थी और केवल घृत इसमें रक्खा जाता था (घृतं घटी)। तुला अनुपात यंत्र को भी कहते हैं किन्तु इसका प्रयोग स्वयं अनुपात के लिए हुआ है और यह १०० पल के बराबर था। इसका प्रयोग द्रव्य-पदार्थ अनुपात के लिए होता था। पण का संकेत अनुपात के सम्बन्ध में भी हो सकता है तथा यह ताँबे की मुद्रा का नाम है। यह २० माष=४ काकिणी अनुपात का

१—मजुमदार : कम्बुज लेख।

२—यही न० १२५, पृ० ३१६, पाद १

मासि मासि च संक्रान्ते देयं द्रोणकतण्डुलम्।
धान्यादिप्रस्थमेकैकपञ्चयज्ञमकल्पयत्॥

३—न० ६६, पृ० १२५, पाद ८३।

अन्नं काकेषु दातव्यं अर्द्धप्रस्थकतण्डुलम्।

४—न० १६१, पृ० ४२५।

५—न० १७७, पृ० ४६६, पाद ४०।

घृतंघटी त्रिकुटुवं दधिक्षीरमधूनि तु।

६—यही पृ० ४८६, पाद १४७।

७—यही पृ० ४६६, पाद ७२।

८—यही पृ० ४६८, पाद ६१।

होता था। अन्त में सीस का एक लेख में उल्लेख है जिसका प्रयोग तन्तुवाय अधिकतर करते थे। इन बाटों के उल्लेख से ज्ञात होता है कि आर्थिक व्यवस्था में इनका पूर्णतया उपयोग होता था और इनके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि व्यवस्था सुगठित तथा सुचारु थी।

बिक्री व्यवस्था—आर्थिक शान्ति के लिए यह आवश्यक है कि बेचने वाले को वस्तु का पूरा मूल्य मिले और ग्राहक उस वस्तु का स्वतन्त्रता से उपयोग कर सके। लेखों में भूमि बिक्री का विवरण मिलता है। राज्य की ओर से कर्मचारी नियुक्त थे जो इस विषय में पूर्णतया जाँच करते थे। दोनों पक्षों के सामने ग्राम-वृद्ध तथा भूमि व्यवस्था सम्बन्धी अन्य पदाधिकारियों के सहयोग से यह कार्य किया जाता था।[१] भूमि के विनिमय में अन्य वस्तु तथा पदार्थ भी दिये जा सकते थे। मुद्रा का प्रयोग अवश्य होता होगा किन्तु विनिमय से भी काम निकाला जा सकता था। इन लेखों में कहीं भी बिक्री शुल्क का उल्लेख नहीं मिलता है पर यह सम्भव जान पड़ता है कि राज्य की ओर से भूमि सीमा निर्धारित तथा अधिकार सौंपने के लिए[२] कर अवश्य लिया जाता होगा। चीनी सूत्रों के अनुसार सोना, चाँदी, मोती तथा गन्ध के डिब्बों के रूप में कर लिया जाता था।[३]

उत्पादन तथा व्यापारिक सम्बन्ध—इस विषय में हमें चीनी ग्रन्थों से विशेष रूप से सहायता मिलती है। कम्बुज

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १२५, पृ० ३१५।

२—देखिये न० १३१, पृ० ३३३।

३—पिलियो : सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३, पृ० २७८।

लेखों में चीनांशुक[1] का उल्लेख है जिससे ज्ञात होता है कि चीन से रेशम आता है। एक लेख में वाप चीन (कदाचित् कोई चीनी) के माल छोड़ने का आदेश दिया गया है।[2] इस माल में सोना, चाँदी, हाथी, भैंस, गाय तथा दासों का उल्लेख है। यह चीनी कम्बुज देश में बस गया होगा। 'लियंग के इतिहास' (५०२-५५६ ई०) में फ़नान में व्यापारिक विषय पर कुछ प्रकाश डाला है। इसमें लिखा है[3] कि भारत और पार्थिया तक से यहाँ बड़ी संख्या में व्यापारी आते थे और यहाँ बहुत सी अपूर्व वस्तुएँ मिलती थीं। देश के पदार्थों में सोना, चाँदी, टीन, बोल (मुसव्वर), हाथीदाँत, मोर, सुन्दर मछलियाँ तथा पाँच रंग के तोते प्रसिद्ध थे। 'टाँग वंश के नवीन इतिहास'[4] में लिखा है कि यहाँ हीरा, चन्दन तथा अन्य पदार्थ मिलते थे और यहाँ का व्यापार एक ओर भारत और दूसरी ओर टोंकिन से होता था। यहाँ एक प्रकार का हीरा निकलता था। एक अन्य चीना ग्रन्थ में लिखा है[5] कि पच्छिम भारत से फ़नान एक जहाज लौटा और उस पर स्फटिक का एक बड़ा दर्पण था जिसका व्यास १६ फीट ५ इंच था। 'दक्षिण त्सी के इतिहास' से ज्ञात होता है कि कम्बुज देश में सोना, चाँदी तथा रेशम का व्यापार होता

१—कम्बुज लेख न० १७७, पृ० ४६६, पाद ४४।
चीनांशुकमयाः पञ्चचत्वारिंशत्पटा अपि।

२—यही न० ८२, पृ० १६७।

३—पिलियो : सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३, पृ० २६३।

४—यही, पृ० २७५।

५—यही, पृ० २८३।

था।[१] अधिकतर व्यापार जल-मार्ग द्वारा होता था किन्तु स्थल-मार्ग से भी व्यापार की सम्भावना रही होगी। लेखों में यहाँ की उपज में कपास, तेल, मोम, अदरक, मसाला तथा इलाइची का उल्लेख मिलता है।[२] धान तो विशेष रूप से पैदा होता था। यातायात के साधनों में पालकी का उल्लेख है पर हाथी की सवारी भी की जाती थी।

कम्बुज देश आर्थिक क्षेत्र में बहुत पीछे न था। इसका व्यापारिक सम्बन्ध भारत तथा चीन से था। रोम से भी व्यापारिक सम्बन्ध के कुछ चिह्न मिले हैं। देश में उत्पादन पर विशेषतया ध्यान दिया जाता था। इसी कारणवश यहाँ की राष्ट्र-सम्पत्ति बहुत बढ़ गई होगी, अन्यथा चम्पा, स्याम, इत्यादि देशों के साथ युद्ध में इसकी शक्ति क्षीण हो गई होती और वह अपना स्वतन्त्र अस्तित्व न स्थापित रख सकता। भारतीय व्यापारियों ने कम्बुज देश को अन्धकार से निकालकर उसके राष्ट्र-निर्माण में पूर्णतया सहायता की। इसका व्यापारिक सम्पर्क अन्य देशों से भी स्थापित हो गया। यद्यपि लेखों में बहुत से व्यवसायों का उल्लेख नहीं मिलता है तथापि वहाँ के अनुपात प्रयोगों से प्रतीत होता है कि आर्थिक व्यवस्था बड़ी ही संगठित रही होगी। खेद है कि प्राचीन मुद्राएँ नहीं मिली हैं यद्यपि लेखों से प्रतीत होता है कि पण नामक ताँबे के सिक्के का प्रयोग होता होगा।

१—पिलियो सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३, पृ० २६१-६२।
२—कम्बुज लेख, न० ५३, पृ० ५७।

अध्याय ४

शिक्षा तथा साहित्य

भारत और कम्बुज देश के बीच सांस्कृतिक तथा व्यापारिक समागम के अतिरिक्त साहित्यिक सम्पर्क भी पूर्णतया स्थापित हुआ। यह प्रतीत होता है कि भारतीय ग्रन्थों को कम्बुज पहुँचने में विलम्ब नहीं लगा और ईसा की छठवीं शताब्दी से ही संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन कम्बुज देश में आरम्भ हो गया, और साथ ही साथ गुप्तकालीन भारतीय लिपि का भी इस देश में प्रचार हुआ। शिक्षा ने वहाँ बड़ी प्रगति दिखाई। इसका मुख्य कारण वहाँ के सम्राटों का सुशिक्षित तथा उदार विचारवादी होना था। उन्होंने शिक्षा तथा धर्म को भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में रक्खा। लेखों में विश्वविद्यालयों का उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु विद्याश्रम अवश्य थे जिनके साथ में पुस्तकालय भी थे। इस अध्याय में हम विषयों के अध्ययन, अध्यापक तथा शिष्य, स्त्रियों की शिक्षा, लिपि, बौद्ध शिक्षा, भारत से विद्वानों का आगमन, विद्वान् सम्राट् तथा विद्या-केन्द्रों पर विवेचना करेंगे। इसके अतिरिक्त साहित्यिक क्षेत्र में प्रगति पर भी विचार किया जायेगा।

अध्ययन विषय—अध्ययन के लिए केवल भारतीय ग्रन्थों का लेखों में उल्लेख मिलता है। एक विद्वान् के लिए यह आवश्यक था कि वह सम्पूर्ण शास्त्र, भाषा तथा लिपि,

नृत्तगीतादि विज्ञान विषय का ज्ञाता हो।[१] शिव शोम नामक विद्वान् वेद, व्याकरण तथा दर्शन में पारंगत था।[२] उसने शास्त्र, वेद, तर्क, काव्य, पुराण, महाभारत तथा व्याकरण का खूब अध्ययन किया था।[३] वेद तथा वेदों के अंगों (वेदांग) का कई लेखों[४] में उल्लेख मिलता है, किन्तु केवल सामवेद तथा अथर्ववेद का ही नाम मिला है।[५] होतृ—जो यज्ञ कराते थे—के लिए वेदों का ज्ञान आवश्यक था। वेदांगों की परिभाषा के अन्तर्गत शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष तथा काव्य आते हैं। निरुक्त शिक्षा तथा कल्पों का उल्लेख लेखों में नहीं मिलता है, किन्तु छन्द, व्याकरण तथा ज्योतिष के सम्बन्ध में हमें इनसे विशेष जानकारी प्राप्त होती है। छन्द के विषय में हम आगे विचार करेंगे। व्याकरण का अध्ययन विशेष रूप से होता है। कवीन्द्र पण्डित के विषय में लिखा है कि वह पञ्च व्याकरण, छन्द, अर्थ तथा आगम और सम्पूर्ण महाभारत तथा

१—यः सर्व्वं शास्त्रशस्त्रेषु शिल्पभाषालिपिष्वपि, नृत्तगीतादि-विज्ञानेष्वादिकर्त्तव पण्डितः (मजुमदार : कम्बुज लेख, न० ६१, पृ० ८६, पाद ५१)।

२—वेदव्याकरणोत्तमः तवर्काभिपारगो···यही न० ५८, पृ० ७१, पाद ८।

३—तर्क्ककाव्यादिसंभूताभिद्धवुद्धमवाप यः। ४१
पुराणभारताशेषशैवव्याकरणादिषु।
शास्त्रेषु कुशलो······४२॥ न० ५४, पृ० ६०।

४—न० २, पाद ६, पृ० ४; न० ३४, पृ० ४५, पाद ५।

५—न० ६७, पृ० २४४, पाद ६४, न० १३, पृ० १६, पाद २।

रामायण का ज्ञाता था।[1] विदचे विद् नामक जयवर्मन् का होता शैव व्याकरण तथा ज्योतिषशास्त्र में निधिपारग था।[2] यह प्रतीत होता है कि व्याकरण का अध्ययन कई परिपाटियों के आधार पर होता था। कई लेखों में पाणिनि[3] का उल्लेख आया है। एक में तो एक सूत्र भी उद्धृत है। पतञ्जलि के महाभाष्य का भी उल्लेख मिलता है किन्तु भाष्यकार का नाम किसी भी लेख में नहीं है। यशोवर्मन् ने भी इस भाष्य पर टीका लिखी थी।[4] वेद तथा व्याकरण के अतिरिक्त तर्क, न्याय तथा दर्शन का अध्ययन भी किया जाता है। पाशुपताचार्य शब्द वैशेषिक के साथ-साथ न्याय तत्त्व को निश्चय के साथ समझा सकते थे।[5] एक लेख में गौतम के न्याय सूत्र का उल्लेख है। विशालक्ष नामक नीति के एक ग्रन्थ के रचयिता का नाम भी आया है।[6] तर्क षट् प्रकार के होते थे।

१—पञ्चव्याकरणान्तगः।२७।
शब्दार्थागमशास्त्राणि काव्यं भारतविस्तरम्।
रामायणञ्च योऽधीत्यशिष्यानप्यध्यजीगपत्। २८।
न० १३१, पृ० ३३७।

२—शैवव्याकरणज्योतिष्शास्त्राम्भोनिधिपारगः।
न० १६१, पृ० ५५२, पाद ४२।

३—न० ६७, पाद २१४, २१८ इत्यादि; न० ७३, पृ० १५५, पाद १३।

४—न० ६२, पृ० ९६, पाद ६४।

५—तस्य पाशुपताचार्य्यः विद्यापुष्पाह्वयः कविः।
शब्द वैशेषिकन्यायतत्त्वार्थकृत निश्चयः॥
न० १०, पृ० १२, पाद ४।

६—न० ६४, पृ० १०६, पाद ६६।

शिव शांम ने भी व्याकरण, वेद तथा अन्य शास्त्रों के अतिरिक्त तर्कशास्त्र का अध्ययन भी किया था। दर्शन में योगाचार्य का भी उल्लेख मिलता है।[१] सांख्य दर्शन का भी विवरण है।[२] पाशुपताचार्य तथा विद्याविशेष, जो ईशानवर्मन् का एक पदाधिकारी था, शब्द वैशेषिक उपाधि से संबोधित किये गये हैं।[३] इनके अतिरिक्त कवीन्द्र पण्डित के विषय में लिखा है कि व्याकरण तथा अन्य ग्रन्थों के अतिरिक्त उसका शब्द, अर्थ तथा आगम का अच्छा ज्ञान था। शब्द अथवा ध्वनि या स्फोट पर बहुत कुछ ग्रन्थकारों ने लिखा है, और यह प्रतीत होता है कि उच्च श्रेणी के विद्यार्थी भाषा ज्ञान—जिसमें शब्दों की ध्वनि तथा उनके अर्थ—जिसके निरुक्त का संकेत भी हो सकता है—का अध्ययन करते थे। लेखों में श्रुति का उल्लेख भी मिलता है।[४] यशोवर्मन् श्रुतियों में प्रवीण था। इससे वेदों के मन्त्र तथा ब्राह्मण अंग का संकेत होता था, किन्तु बाद में यह शब्द सम्पूर्ण वेद तथा उपनिषदों के लिए प्रयोग होने लगा। कम्बुज के लेखों में उपनिषदों का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। कदाचित् श्रुति का संकेत स्मृति के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों के लिए होगा जो पहिले सुनकर याद किये जाते थे।

इन लेखों से यह भी ज्ञात होता है कि धर्मशास्त्र का

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० ६७, पृ० २६४, पाद २७५।
२—न० ६४, पृ० १०७, पाद ४४।
३—न० १६, पृ० २२, पाद ८।
४—न० ९३, पृ० २१८, पाद २१०; न० २, पृ० ४, पाद ९।

लोगों को ज्ञान था। भववर्मन् धर्मशास्त्रों में शास्त्रज्ञ था। एक लेख में मनुस्मृति[१] से उद्धृत एक श्लोक मिलता है। इन धर्मशास्त्रों का ज्ञान शासन सम्बन्धी विषयों के लिए विशेषतया लाभकारी था। इनके अतिरिक्त रामायण, महाभारत तथा पुराणों के अध्ययन का भी उल्लेख है।[२] शिव शोम पुराणों तथा महाभारत का ज्ञाता था[३] और कवीन्द्र पंडित ने तो सम्पूर्ण महाभारत तथा रामायण को पढ़ा था।[४] सुदूर-पूर्व में इन दोनों ग्रन्थों ने अपना स्थान जमा लिया था और उससे उद्धृत बहुत से चित्र कम्बुज की वास्तुकला में पाये जाते हैं। लेखों में वशिष्ठ, अरुन्धती, कंस वध, कृष्ण, पाण्डव, कीचक, भीम तथा द्रौपदी के नाम मिलते हैं।[५] एक लेख में महाभारत के आदिपर्व के सम्भव अध्याय की हस्तलिखित पुस्तक का उल्लेख है।[६] यह व्यास ऋषि ने लिखी थी। आदिकवि वाल्मीकि का भी नाम मिलता है।[७] इस सम्बन्ध में अधिक विवरण आगे चलकर 'साहित्य-विवेचन' अध्याय में किया

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० ६३, पाद ६३-६४।

२—न० ९७, पाद २०७, ८३; न० १३, पृ० १९, पाद ४।

३—न० ५४, पृ० ६०, पाद ४२।

४—देखिये, पृ० १२७ नोट न० २

५—न० ६४, पृ० ११०, पाद ७९, ८१।

६—स्थितये दत्तं संभवपुस्तकम्। १।
भवज्ञानेन निहितं व्याससत्रनिबन्धनम् ॥ २ ॥
न० ४१, पृ० ५१।

७—वल्मीकजमुखोद्गीर्ण्णं स्वपुत्रो राघवस्य तु।
न० ६४, पृ० ११०, पाद ८१।

जायेगा। ज्योतिष तथा चिकित्साशास्त्र का भी अध्ययन किया जाता था। एक लेख में सुश्रुत का नाम मिलता है।[१] ज्योतिषशास्त्र के ज्ञाता होरा[२] कहलाते थे और उनका राज्य-सभा में मान था। लेखों में वैद्यों का भी उल्लेख है।

संस्कृत साहित्य का विशेष रूप से अध्ययन होता था। लेखों में कई तो गौड़ शैली[३] के हैं और उनकी संस्कृति बड़ी उच्च कोटि की है। कालिदास के 'रघुवंश' नामक काव्य का कई लेखों[४] में उल्लेख है। रुद्रवर्मन् की तुलना दिलीप से की गई है।[५] कालिदास के अतिरिक्त भारवि, वसुबन्धु तथा प्राकृत लेखक गुणाढ्य के नाम भी लेखों में मिलते हैं।[६] अन्य ग्रन्थों में प्रवर सेन का 'सेतुबन्धु' 'सिंहावलोकितन्याय' तथा वात्स्यायन का 'कामसूत्र' प्रमुख है।[७] यह नहीं कहा जा सकता कि उस देश में कौन-कौन से ग्रन्थों का अध्ययन अनिवार्य था पर विद्वान् होने के लिए वेद, व्याकरण तथा तर्क और दर्शन में पारंगत होना आवश्यक था। १६ कलाओं

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० ६१, पृ० ८५, पाद ४६।

२—होराशास्त्राब्धिपारगः न० ७४, पाद ८, पृ० १५६।

३—मजुमदार : कम्बुज लेख, पृ० १६२।

४—न० ९७, पाद १६४, १९९ इत्यादि, पृ० २५५, २५९।

५—यस्य सौराज्यमद्यापि दिलीपस्येव विश्रुतम्।
न० ३०, पृ० ३९, पाद २।

६—न० ६४, पाद ३१, ६९।

७—न० ६३, पाद ३४, पाद ७३। इसी लेख में गौतम के न्याय सूत्र का भी उल्लेख है (पाद ८९)। वात्स्यायन के लिए देखिये न० ६२, पृ० ८५, पाद ८२।

का ज्ञाता 'विद्या शशि' हो सकता था।[१] यशोवर्मन् के विषय में लिखा है कि वह नृतगीतादि तथा विज्ञानों इत्यादि में भी पण्डित था।

लेखों में छन्दशास्त्र के ज्ञाता तथा कवियों का भी उल्लेख है। जयवर्मन् तृतीय का गुरु भागवत कवि था और उसका पिता वेद, व्याकरण तथा दर्शन में प्रवीण था। इसी लेख में श्री निवास कवि का उल्लेख है जो सब से श्रेष्ठ थे और उन्होंने सम्राट् से 'पृथ्वीन्द्रपण्डित' की उपाधि प्राप्त की थी।[२] जयेन्द्र पण्डित के फलप्रिय नामक एक शिष्य ने भी 'कवीन्द्र-पण्डित' पद को प्राप्त कर लिया था।

अध्यापक तथा शिष्य—लेखों में गुरू के लिए दो शब्दों का प्रयोग किया गया है—उपाध्याय[३] तथा अध्यापक[४]। विद्यार्थियों को अध्येतृवासिन कहकर संबोधित किया गया है। सोमशिव का एक शिष्य यशोवर्मन् के समय में इन्द्रवर्मेश्वर क्षेत्र में उपाध्याय नियुक्त हुआ था। इसके विषय में लिखा है कि उसने भगवान् शंकर के चरणों में शास्त्रों का अध्ययन किया था। कुछ विद्वानों का विचार[५] है कि इसमें

१—अवाप्य षोडशकलास् शशाङ्को याति पूर्णताम्
न० १२, पृ० १५, पाद १५।

२—न० ५८, पृ० ७१, पाद ५ से ९ तक।

३—न० ७३, पृ० १५३, पाद १९-२०।

४—न० १९०, पृ० ५४४, पाद २२।

५—कोड: कम्बुज लेख, भाग १, पृ० ३७; प्रो० नीलकण्ठ शास्त्री—मद्रास की पुरातत्व सभा की पत्रिका भाग ११, न० ३, पृ० २८५। मजुमदार : कम्बुज देश, पृ० १०९; श्री नीलकण्ठ शास्त्री ने

स्वामी शंकराचार्य का संकेत है। विनय नामक एक विद्वान् की नियुक्ति परमेश्वर के मन्दिर में अध्यापक पद पर हुई थी।[१] भारद्वाज गोत्रिय जय महाप्रधान की छोटी लड़की का पुत्र जय मंगलार्थ श्रीन्द्रजयवर्मन् के समय में अध्यापकाधिप नियुक्त हुआ।[२] इन दोनों पदों की परिभाषा करना कठिन है पर अध्यापकाधिप शब्द से प्रतीत होता है कि किसी विद्यामन्दिर में एक से अधिक अध्यापक होते थे और उनमें से उच्च अथवा श्रेष्ठ को इस नाम से संबोधित किया जाता था। कोष में उपाध्याय का प्रयोग उस गुरू के लिए किया गया है जो वेद, वेदांग तथा व्याकरण के एक अंग पढ़ाने से अपनी जीविका चलावे। वह आचार्य से भिन्न था। मन्दिर ही विद्याश्रम थे और लेखों से ज्ञात होता है कि वहीं पर विद्यार्थी तथा गुरू रहते थे और वहीं से उनको भोजन-वस्त्र इत्यादि मिलता था। विद्यार्थियों में जयेन्द्र पण्डित के शिष्य फलप्रिय ऐसे बहुत से थे जिनकी प्रतिभा चमकी। स्त्रियाँ भी गुरू से शिक्षा ले सकती थीं पर कदाचित् उनका प्रबन्ध पृथक् रहा होगा। आश्रमों में स्त्रियों के आने पर प्रतिबन्ध था। लेखों में सुशिक्षित स्त्रियों के कई उदाहरण मिलते हैं। योगेश्वर पण्डित की एक शिष्या जनपदा[३] ने केशव नामक एक ब्राह्मण से विवाह किया था। जयवर्मन् सप्तम् को प्रथम राज्ञी जय-

---

इसका विरोध किया है पर वास्तव में यह प्रतीत होता है कि यह विद्वान् भारत से विद्याध्ययन के लिए आया था।

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १२६, पृ० ३१६।

२—यही न० १६०, पृ० ५४१।

३—यही न० १४८, पृ० ३५५, पाद १४-१५।

राजदेवी[१] को शिक्षा-दीक्षा इसकी बड़ी बहिन ने दी थी जो स्वयं विदुषी थी और आश्रमों में बौद्ध ग्रन्थों की शिक्षा देती थी। एक अन्य शिक्षित स्त्री तिलका थी जिसका उल्लेख लाओस में पाये एक लेख में मिलता है। गुरू-शिष्य के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में भी कोई जानकारी प्राप्त नहीं है।

लिपिज्ञान—चीनी ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि उस देश की लिपि भारत से आई थी। त्सिन वंश के इतिहास (२६५-४१९ ई०) में लिखा है कि लिपि के अंक हो प्रान्त—जिसकी समानता मध्य एशिया से की जाती है—में प्रचलित लिपि से मिलते हैं।[२] इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं कि फ़ूनान में भारतीय लिपि का प्रचार आरम्भ हो गया था। आठवीं शताब्दी के अन्त में लिखित चीन के विश्वकोष में भी कम्बुज की वर्णमाला को भारतीय कहा है। इस देश में संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में लिखे लेख इस बात के साक्षी हैं कि भारत से ही यहाँ लिपि गई थी।

भारतीय तथा कम्बुज विद्वानों का समागम—लेखों से ज्ञात होता है कि बहुत से विद्वान् कम्बुज देश गये और कुछ वहाँ से भारत भी विद्याध्ययन के लिए आए। अगस्त्य नामक एक वेद-वेदांग में पारंगत विद्वान् आर्यावर्त निवासी था[३]। सर्वज्ञ-मुनि नामक एक अन्य विद्वान् चारों वेदों तथा आगमों का ज्ञाता था और शिव-भक्त था।[४] वह आर्य देश का निवासी

१—मजुमदार : न० १८२, पृ० ५१५।
२—पिलियो : सुदूरपूर्व पत्रिका भाग ३, पृ० २५४।
३—मजुमदार : कम्बुज देश, पृ० १०८।
४—कम्बुज लेख न० १९१, पृ० ५४८।

था और कम्बुज में आकर उसने तथा उसके वंशजों ने उच्च पदों को सुशोभित किया। हिरण्यदाम नामक विद्वान्[१] ने भारत से वहाँ जाकर तन्त्र-विद्या सिखाई, और शिव कैवल्य को उसने व्रहविनाशिख, नयोत्तर, संमोह तथा शिरच्छेद नामक विद्यायें आदि से अन्त तक पढ़कर सुनाईं जिससे वे लिखी जा सकें। भारत के अतिरिक्त नरपति देश [२] (कदाचित् ब्रह्मा) से भी जय महाप्रदान नामक ब्राह्मण कम्बुज देश आया क्योंकि उसने सुना था कि यहाँ बड़े-बड़े वैदिक विद्वान् थे। कम्बुज से भी कुछ विद्वान् विद्याध्ययन के लिए भारत आये थे। इन्द्रवर्मन् के गुरू शिवसोम ने, जो सम्राट् जयेन्द्राधिपतिवर्मन् का पौत्र और जयवर्मन् द्वितीय का मातुल था, भगवान शंकर के चरणों में शास्त्रों का अध्ययन किया था। कोड के मतानुसार कुछ लेखों की गौड़ शैली प्रमाणित करती है कि उनके लेखक या तो गौड़ देश निवासी होंगे अथवा वहाँ रहे होंगे। विद्वानों के आदान-प्रदान से शिक्षा तथा साहित्यिक क्षेत्र में बड़ी प्रगति हुई।

शिक्षा-विद्या केन्द्र—प्रायः धार्मिक आश्रम ही शिक्षा के केन्द्र थे। यशोवर्मन् ने अपने राज्य में १०० आश्रमों[३] का निर्माण किया और प्रत्येक के साथ में एक मन्दिर था। इनका अध्यक्ष 'कुलाध्यक्ष' कहलाता था। इन आश्रमों की नियमावली का विशेष रूप से विवरण मिलता है। आगन्तुकों के आदर-सत्कार के विषय में लिखा है कि वैष्णव आश्रम में पहिले

१—मजुमदार : न० १५२, पृ० ३६३।
२—यही न० १६०, पृ० ५४१।
३—यही न० ६१, पृ० ८२ तथा अन्य सम्बन्धित लेख।

तीनों वेदों के ज्ञाता और फिर व्याकरणाचार्य को स्थान देना चाहिए। ज्ञान की अपेक्षा पञ्चरात्र तथा व्याकरण के शिक्षक का स्थान उच्च है। गृहस्थों में धन, कुल, आयु, पुण्यकार्य तथा विद्या के आधार पर सब से उच्च स्थान विद्वान् को मिलना चाहिए। इन आश्रमों में वैष्णव, ब्राह्मण अथवा बौद्ध भिक्षु, जो विद्याध्ययन कर रहे हों, को दैनिक आवश्यकताओं की सम्पूर्ण सामग्री दी जाती थी। इन आश्रमों में दो लेखक, दो 'पुस्तकरक्षिण' तथा ६ 'पत्रकारक' होते थे जो ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ बनाते थे। एक लेख में एक आश्रम की सम्पूर्ण शास्त्रों की हस्तलिखित लिपियों के दान का विवरण है। एक अन्य लेख में द्विजेन्द्रपुर में ब्राह्मण दिवाकर भट्ट द्वारा स्थापित विद्याश्रम का उल्लेख है और वहीं पर विष्णु-महेश्वर की मूर्ति भी स्थापित की गई थी।[१] आश्रमों में अध्यापक तथा अध्येतृ अन्तेवासिनो के लिए राज्य तथा उच्च श्रेणी के पुरुषों की सहायता के अतिरिक्त कृषीबल तथा व्यापारियों से भी अन्न तथा वस्त्र के रूप में सहायता मिलती थी।[२] यह आश्रम विद्या के बड़े केन्द्र हुए और यहाँ से सहस्रों ब्राह्मण तथा बौद्ध विद्वान निकले।

बौद्ध शिक्षा—तेप-प्रानम[३] के लेख से ज्ञात होता है कि यशोवर्मन् ने वैष्णव और शैव के अतिरिक्त बौद्ध आश्रम का भी निर्माण कराया जो सौगताश्रम नाम से प्रसिद्ध था। यहाँ बौद्ध ग्रन्थ तथा व्याकरण (शब्दशास्त्र) का अध्ययन किया

१—मजुमदार : न० ११२, पृ० २९६, पाद ४२।
२—यही न०१७७, पृ० ४६७, पाद ५३-६१।
३—यही न० ६७, पृ० १२७ से।

जाता था। एक अन्य लेख में कीर्ति पण्डित नामक जयवर्मन् पञ्चम् के मन्त्री का उल्लेख है। इसने मध्यविभाग शास्त्र की पुनः ज्योति जलाई और वह विदेशों से दर्शन की बहुत सी पुस्तकें लाया।[१] उनमें से एक तत्त्वसंग्रह व्याख्या थी। सूर्यवर्मन् ने बौद्ध शिक्षा-प्रसार में बहुत सहायता की और कहा जाता है कि सत्य की खोज के लिए उसने एक विद्यालय की स्थापना की। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि जयवर्मन् सप्तम् की द्वितीय राज्ञी इन्द्रा देवी बौद्ध ग्रन्थों का सम्पूर्ण रूप से अध्ययन कर चुकी थी और वह विहारों में शिक्षा देती थी। उसने अपनी छोटी बहिन जयराज देवी को स्वयं शिक्षा दी थी और उसकी मृत्युपरान्त सम्राट् ने इन्द्रा देवी से विवाह कर लिया।

कम्बुज के विद्वान् सम्राट्—लेखों से प्रतीत होता है कि कम्बुज देश के सम्राट् विद्वान् थे और उनकी शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध रहता था। इसी के फलस्वरूप देश में शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति हुई और ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्मों का स्वतः विकास हुआ। सूर्यवर्मन् के विषय में लिखा है कि भाषा, काव्य, षट्दर्शन तथा धर्मशास्त्र का पूर्णतया ज्ञाता था।[२] यशोवर्मन् की शिक्षा के लिए इन्द्रवर्मन् के गुरु शिवसोम के शिष्य वामशिव की नियुक्ति हुई थी। जयेन्द्र पण्डित ने

१—देखिये, चटर्जी : कम्बुज देश में भारतीय संस्कृति का प्रभाव, पृ० २६२; कोड : हिन्दू राष्ट्र, पृ० २०१।

२—नं० १४९, पृ० ३६१, पाद ६।

भाष्यादिचरणा काव्यपाणिष् षड्दर्शनेन्द्रिया।
यन्मतिर्द्धर्म्मशास्त्रादि मस्तकाजङ्गमायता॥

उदयादित्यवर्मन् को सिद्धान्त, व्याकरण, धर्मशास्त्र तथा अन्य शास्त्रों की शिक्षा दी।[१] जिस देश में शासकों को अच्छी शिक्षा मिले वहाँ पर प्रजा के लिए उचित प्रबन्ध होना स्वाभाविक है। यही कारण था कि भारतीय साहित्य ने कम्बुज देश में अपनी पूरी छाप डाल दी।

साहित्य—साहित्यिक प्रगति का जीवित चित्र लेखों से स्वयं मिलता है। इनसे ज्ञात होता है कि लेखक संस्कृत छन्द-शास्त्र के नियमों से अनभिज्ञ न थे और बड़े लम्बे-लम्बे लेख पद्य में लिखे जाते थे। कोड का मत है कि कुछ लेख गौड शैली में लिखे गये हैं और उनके प्रशस्तिकार या तो गौड़ निवासी थे अथवा वहाँ हो आये थे। कम्बुज में केवल भारतीय साहित्य के अंश मिलते हैं। इस सम्बन्ध में हम ग्रन्थों का उल्लेख पहिले ही कर चुके हैं। यहाँ पर केवल सूक्ष्म रूप से साहित्यिक प्रगति पर विचार किया जायेगा। यशोवर्मन् के आश्रम स्थापित सम्बन्धी लेखों से पता चलता है कि प्रत्येक आश्रम में दो लेखक तथा षट् पत्रकारक होते थे और यह मूल ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ बनाते थे। इसी लेख में मसी तथा रिक्त पात्र का भी उल्लेख है। इससे यह प्रत्यक्ष है कि देश में भारतीय ग्रन्थों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया था। इन ग्रन्थों का पूर्ण अध्ययन किया गया जिसके फलस्वरूप उनकी साहित्यिक क्षेत्र में प्रगति हुई। लेखों में वैदिक तथा रामायण, महाभारत और पुराणों से उद्धृत आख्यान तथा आख्यायिकाओं का भी विवरण है। एक लेख में इन्द्र द्वारा अहल्या-हरण का उल्लेख है तथा कंस-बध, हिरण्यकश्यप वासुदेव

१—न० १५२, पृ० ३६५।

इत्यादि की कथाओं का भी विवरण है। पाणिनि तथा भाष्य-कार के ग्रन्थों का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। स्मृतियों में मनु से कई श्लोक उद्धृत हैं। कालिदास के ग्रन्थों में 'रघुवंश' से उपमायें ली गई हैं। एक लेख में रुद्रवर्मन् की दिलीप से तुलना की गई है। काव्य के प्रति विशेष अनुराग प्रतीत होता है।

कम्बुज देश के सांस्कृतिक इतिहास में शिक्षा तथा साहित्य का विशेष स्थान रहा है। इस सम्बन्ध में लेख ही मूल श्रोत हैं और उन्हीं के आधार पर हम तत्कालीन व्यवस्था चित्रित कर सके। देश की राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक अवस्था, शिक्षा तथा साहित्यिक प्रगति में विशेष रूप से सहायक रही। कम्बुज सम्राट् भी उदार चित्त के थे तथा वे स्वयं विद्वान् थे इसीलिए यह प्रगति हो सकी।

अध्याय ५

धार्मिक जीवन

सात सौ अथवा इससे अधिक वर्ष के कम्बुज इतिहास में, जिसका हमने अध्ययन किया है, लेश मात्र भी धार्मिक परिवर्तन नहीं हुआ। १४०० ई० के बाद भी यहाँ इस्लाम का प्रभाव नहीं पहुँच सका यद्यपि हिन्देनेशिया के द्वीपों में वह धर्म तेज़ी से फैल रहा था। इसका मुख्य कारण यह था कि इस देश में धार्मिक सहिष्णुता आरम्भ से रही और यहाँ के सम्राटों ने भी अपने उदार विचारों द्वारा ब्राह्मण और बौद्ध धर्मों को विकसित होने का पूरा अवसर दिया। यशोवर्मन् ने विष्णु तथा शिव के अतिरिक्त बौद्ध आश्रम की भी स्थापना की और इसके लिए भी वही सुविधायें दी गईं। कम्बुज के वे सम्राट भी, जिनका बौद्ध धर्म की ओर झुकाव था, शैव मत का उतना ही आदर करते थे। बुद्ध को ब्राह्मण त्रिमूर्ति में शिव तथा विष्णु के साथ स्थान दिया गया। लेखों से हमें प्राचीन धार्मिक वृत्तियों का पता नहीं चलता है पर कदाचित् आदि कम्बुज निवासी प्रकृति विभूतियों को मानते थे और ब्राह्मणों ने उनमें से कुछ को अपना लिया। एक लेख में शिव को शिखरेश्वर[१] कहा है और एक अन्य लेख[२] में जयवर्मन् चतुर्थ द्वारा कृष्ण को चम्पेश्वर के नाम से संबोधित किया

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १४६, पृ० ३४६।
२—यही न० ८१, पृ० १६६।

है। हिन्दू संस्कृति तथा धर्म ने कम्बुज देश में पूर्णतया अधिकार स्थापित कर लिया था और संस्कृत ही राज्य-भाषा थी। इस कारणवश लेखों से हमको केवल ब्राह्मण धर्म तथा महायान बौद्ध मत के विषय में ही ज्ञान प्राप्त होता है। इस अध्याय में हम शैव मत, लिङ्गों की स्थापना, तन्त्रवाद, वैष्णव मत, शिव-विष्णु की सम्मिलित मूर्तियाँ, वैदिक यज्ञ, पितृ मूर्ति की स्थापना, स्थानीय धार्मिक वृत्तियाँ, तप, महायान बौद्ध धर्म, धार्मिक केन्द्र-आश्रम इत्यादि, तथा तीर्थ-यात्रा इत्यादि विषयों पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।

शैव मत—शिव की उपासना कम्बुज देश में सदैव ही रही। शैव मत राज्य-धर्म था और कुछ सम्राटों के बौद्ध होते हुए भी इसको क्षति नहीं पहुँची। शिव की दो प्रकार से पूजा की जाती थी—एक तो उनकी मूर्ति की, और दूसरी लिंग रूप में। वट विहार के मन्दिर में शक सं० ५३५ के लेख के अतिरिक्त शिव-पार्वती की मूर्ति भी मिली है।[१] इसमें शिव की बाईं जाँघ पर पार्वती बैठी दिखाई गई हैं। एक अन्य लेख[२] में अमर भाव द्वारा शिव की उत्सव-मूर्ति के निर्माण का उल्लेख है जो कि बाहर जलूस में निकाली जाती थी। सम्राट् इन्द्रवर्मन् ने भी तीन शिव तथा तीन देवी की मूर्तियाँ स्थापित की थीं।[३] एक अन्य लेख में यज्ञवराह द्वारा उमा महेश्वर की मूर्ति-स्थापना का उल्लेख है।[४] एक दूसरे लेख

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० ७, पृ० ८; सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३५, पृ० ३६।

२—यही न० ७५, पृ० १५७।

३—यही न० ५५, पृ० ६१।

४—यही न० १०२, पृ० २७१।

में शिव तथा दुर्गा की मूर्तियों के स्थापन का विवरण है।[१] शिव की लिंग रूप में भी उपासना होती थी और ऐसे बहुत से लेख मिले हैं जिनमें उपासक के नाम पर शिवलिंग का नामकरण किया गया है। जो नाम लेखों में मिलते हैं उनमें कुछ तो रुद्र-शिव के वैदिक नाम हैं, जैसे रुद्र, ईशान्, शंकर शम्भु तथा ईश्वर। अन्य नाम जैसे आभ्रात-केश्वर, व्योमेश्वर, गम्भीरेश्वर, निकामेश्वर, विजयेश्वर, कदमवेश्वर, त्रयम्बक, नृतेश्वर, त्रिभुवन-महेश्वर तथा अचलेश्वर इत्यादि दाता के नाम पर दिये गये हैं।[२] लेखों में शिव का वर्णन तथा उनकी स्तुति भी मिलती है। गंगा तथा इन्दु उनके शीश पर विराजमान दिखाये गये हैं। एक लेख में शिव की आठ प्रकार की मूर्ति (अष्ट मूर्ति) की स्थापना का उल्लेख है।[३] कदाचित् इससे आठ शैव मन्दिरों के निर्माण का संकेत होगा। मूर्ति-स्थापना के लिए बड़े-बड़े मन्दिर बनाये जाते थे। एक लेख में पत्थर के बने शिव मन्दिर का उल्लेख है और उसके साथ में एक भक्तशाला का भी निर्माण हुआ।[४] एक शिवलिंग ८१ फीट की ऊँचाई पर स्थापित किया गया।[५] लिंग के साथ अन्य मूर्तियों की स्थापना भी की जाती थी। एक लेख में पार्वती की दो मूर्तियों की स्थापना का विवरण है। अन्य

---

१ – मजुमदार : कम्बुज लेख न० ६१, पृ० ८१।

२—यही न० ६६, तथा ७०।

३—यही न० ५६, पृ० ६७, पाद २५—

राजवृत्तीरितेशस्य सोष्टमूर्तीरतिष्ठिपत्।

४—यही न० ४८, पृ० ५४।

५—यही न० ८५, पृ० १७२।

स्थान पर पार्वती की, विष्णु तथा ब्रह्मा की शिवलिंग के साथ स्थापना की गई थी।[१] शिव को सबसे श्रेष्ठ माना है। लेखों से प्रतीत होता है कि इस देवता की संहरण-शक्ति की अपेक्षा इसकी पशुपति, जगत्पति, परमब्रह्म रूप में उपासना की जाती थी। एक लेख में पाशुपताचार्य[२] तथा अन्य में शिवाचार्य का उल्लेख है। कम्बुज देश में पाशुपतों का भिन्न सम्प्रदाय होना आश्चर्यजनक नहीं। उस समय उत्तरी भारत में भी पाशुपतों का बड़ा प्रभाव था और यहाँ के बहुत से बिहार उनके संरक्षण में थे जैसा कि कमान[३] के लेख से प्रतीत होता है। हो सकता है कि बहुत से पाशुपताचार्य यहाँ से कम्बुज गये हों। तन्त्रविद्या सिखाने के लिए भारत से हिरण्यदाम नामक ब्राह्मण कम्बुज देश गया था। वैयान के मन्दिर में, जहाँ बहुत से देवता तथा सम्राटों की मूर्तियाँ स्थापित की गई थीं, शिव को ही प्रधान स्थान दिया गया और उनकी चतुर्मुखी मूर्ति प्रत्येक बुर्ज पर बनी है।

सम्मिलित मूर्तियाँ--शिव तथा विष्णु की मिली हुई मूर्ति की भी स्थापना की जाती थी और ऐसे बहुत से लेख मिले हैं जिनमें इन दोनों देवताओं का समिश्रण है। पसैंगपति ने एक शिवलिंग, एक दुर्गा की मूर्ति, एक शम्भु-विष्णु की मूर्ति तथा एक विष्णु त्रैलोक्यसार की मूर्ति स्थापित की

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० ९३, पृ० १९४।

२—तस्य पाशुपताचार्यः विद्यापुष्पाह्वय कविः
मजुमदार : न० १०, पृ० १२, पाद ४; न० १२९ पृ० ३२३।

३—एपीग्राफिया इण्डिका भाग २३, भोज प्रथम के समय में भी पशुपात सम्प्रदाय उन्नति कर रहा था (एपीग्राफिया इण्डिका, भाग २१, पृ० २९४)।

थी।[१] एक और लेख में एक मूर्ति तथा एक शिव-विष्णु के लिंग दान का उल्लेख है।[२] ताम्रपुर के एक आधीन नामक व्यक्ति ने शिव-विष्णु की मूर्ति स्थापित की।[३] एक अन्य लेख में हर और अच्युत् के एक शरीर में होने का उल्लेख है और उसी मूर्ति-स्थापना के लिए एक मन्दिर का भी निर्माण किया गया था।[४] हर और अच्युत् संसार के कल्याणार्थ शरीर से एक हो गये यद्यपि पार्वती तथा श्री के पति के नाते दोनों के रूप भिन्न थे। एक दूसरे लेख में उन्हें शंकर नारायण कहकर सम्बोधित किया गया है।[५] हरिहर (विष्णु-शिव) को एक ख्मेर लेख में यज्ञपतीश्वर[६] कहा है। सम्मिलित मूर्तियों के स्थान से न तो शिव और न विष्णु की प्रतिभा घट गई थी। ९वीं शताब्दी के बाद शैव मत आगे बढ़ने लगा पर विष्णु की पूजा होती रही और बहुत से लेख मिले हैं जिनमें विष्णु मन्दिरों के निर्माण का उल्लेख है। शिव तथा विष्णु के चरण-स्थापन का भी कई लेखों में उल्लेख है।

वैष्णव मत––विष्णु को भिन्न-भिन्न नाम से संबोधित किया गया है जैसे वासुदेव, हरि, नारायण, कृष्ण इत्यादि। कम्बुज के सब से प्रथम लेख में विष्णु की स्तुति की गई है। जयवर्मन् के पुत्र अमृतगर्भ ने ८८३ ई० में विष्णु के एक

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० ११, पृ० १३।
२—यही न० १८, पृ० २३।
३—यही न० २५, पृ० ३०।
४—यही न० ७२, पृ० १५०।
५—यही न० ५१, पृ० ५६।
६—यही न० ४३, पृ० ५२।

मन्दिर का निर्माण कराया था।[१] यशोवर्मन् के मातुल ने भी विष्णु की एक मूर्ति की स्थापना की थी।[२] इसी प्रकार यज्ञवराह के मित्र पृथ्वीन्द्रपर ने भी विष्णु की एक मूर्ति स्थापित की[३] थी। एक लेख में वर्द्धमान देव की स्तुति की गई है[४] जो कि विष्णु का एक नाम है, किन्तु निकट में शिव लिंग मिलने के कारण विद्वानों का विचार है कि यह शिव का वर्द्धमान लिंग रूप में नाम है। विष्णु को चक्रतीर्थ स्वामी[५] भी कहा गया है। गुणवर्मन् के एक लेख में वेद-वेदांगों में पारंगत ब्राह्मणों द्वारा इस मूर्ति की प्रतिष्ठा की गई थी। उस लेख में लिखा है कि जो कोई इस मन्दिर में आवेगा वह अपने दुष्कर्मों के फल को छोड़कर सीधा विष्णु के चरणों में जायेगा। इस लेख से प्रतीत होता है कि कर्मफल तथा भक्ति की भावना ने कम्बुज देश में दृढ़ता से प्रवेश किया था। कम्बुज देश के धार्मिक जीवन में विष्णु का स्थान सदैव रहा। अंगकोर वाट में कृष्ण-लीला भी दिखाई गई है और एक लेख में उनका तथा कालिन्दी (यमुना) पर स्थित बृन्दावन का भी उल्लेख है।[६] जयवर्मन् तृतीय तथा सूर्यवर्मन् द्वितीय का मृत्युपरान्त 'विष्णुलोक' तथा 'परमविष्णु लोक' नामकरण हुआ।

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० ५८, पृ० ७०।

२—यही न० १७, पृ० १६०।

३—यही न० १०८, पृ० २८२

४—यही न० २२, पृ० २७।

५—यही न० २, पृ० ४, पाद १०—मुक्तोदुष्कृतकर्म्मणः स परमं गच्छेत् पदं वैष्णवं।

६—यही न० १११, पृ० २८५।

अन्य देवी-देवताओं की उपासना—शिव-विष्णु के अतिरिक्त, लेखों में अन्य देवताओं तथा देवियों की मूर्ति-स्थापना का भी उल्लेख मिलता है। कुछ के नाम शिव के पर्यायवाची प्रतीत होते हैं। त्रिमूर्ति में शिव और विष्णु के अतिरिक्त ब्रह्मा का भी नाम आता है। ब्रह्मा का कई लेखों में उल्लेख मिलता है ।[१] इनको चतुर्मुखी लिखा है। कई लेखों में इनकी स्तुति की गई है। इनकी मूर्ति भी कम्बुज में मिली है। एक लेख में शालग्राम[२] और सूर्य की मूर्तियों का उल्लेख आया है। यह दोनों पत्थर पर खुदी हुई हैं। कई लेखों में गणेश का उल्लेख है ।[३] गणेश की भी मूर्ति कम्बुज में मिली है। इनके अतिरिक्त कई अन्य देवताओं के नाम भी मिलते हैं जैसे आम्रतकेश्वर, उत्पन्नेश्वर, यज्ञपतीश्वर, पिंगलेश, प्रजापतिश्वर इत्यादि। इनमें से कुछ तो शिव के पर्यायवाची शब्द प्रतीत होते हैं, अन्य किसी और देवता के नाम हैं। स्वामिकार्तिक की भी उपासना होती थी। देवियों में मुख्यतया दुर्गा, उमा, भवानी, भगवती, चतुर्भुजा, सरस्वती, गंगा, इन्द्राणी इत्यादि पूज्यनीया थीं और इनकी मूर्तियाँ स्थापित की गई थीं ।[४] इन नामों में भी कई पर्यायवाची हैं। इतने अधिक देवी-देवताओं की पूजा पुराणों तथा भागवत् में वर्णित कथाओं के आधार पर ही प्रचलित थीं। ऐसी बहुत सी कथाएँ पत्थर पर खुदे चित्रों में भी अंकित हैं

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० ८६, ९२ तथा ९७।
२—यही न० ४०, पृ० ५०।
३—यही न० ५३, ६०, ७४।
४—यही न० ५९, ६०, ६१, ८६ इत्यादि।

स्थानीय देवता—कुछ स्थानीय देवताओं को भी आदर का स्थान दिया गया था और उनका उल्लेख लेखों में मिलता है। एक लेख में[१] कम्बु स्वयम्भु तथा उनकी स्त्री मीरा का उल्लेख है और दूसरे में स्थानीय देवी-देवताओं की एक लम्बी सूची है।[२] प्रसत ता सीव (वतम वांग) की देवी निद्रा, वाको (सियम रेप) के परमेश, प्रा-निएक-बुओस (म्लू-प्रै) के गणेश, प्रा-थेत-प्रा-श्रे (थवां ख्मुस) के पंचलिंगेश्वर, प्रह्-थत-खतौम (थवाँ ख्मुस) के रुद्र, वट-हा (वा नोम) के कात्तिकेय वत कन्डल (वा नोम) के नारायण, प्रा ओंकर (बन्ते मस) के ब्रह्मराक्षस, हुए तमोह (वसक) की रुद्रानी—स्थानीय पूज्यनीय देवी-देवता थे। ब्रह्मराक्षस के उल्लेख से ज्ञात होता है वहाँ भूत-प्रेत आदि में विश्वास था और ऐसे पत्थर पर अंकित चित्र भी उस देश में मिले हैं। एक लेख में पवित्र अग्नि का उल्लेख है।[३]

देवराज—कम्बुज लेखों में एक विशेष धार्मिक प्रतिक्रिया का उल्लेख मिलता है। राज्य और धर्म के समिश्रण से एक नवीन धारा बही। इसके अन्तर्गत सम्राट् में देवता का अंश माना गया और मृत्युपरान्त उसका दिवंगत नामकरण हुआ। इस सम्बन्ध में हमको कम्बुज लेखों में जो सामग्री मिलती है उनसे ज्ञात होता है कि इस धार्मिक प्रकृति की तीन धारायें थीं। पहिली में सम्राट् ही को देवता का अंश मान लिया गया था। दूसरी में देवताओं के नाम मृतक

१— मजुमदार : कम्बुज लेख न० ६२, पृ० १८५।
२—यही न० ६०, पृ० ७५।
३—यही न० ६५, पृ० २२०।

सम्राट् के आधार पर रक्खे गये और उनकी मूर्तियाँ भी स्थापित होने लगीं जिनमें गुरू, माता-पिता, मातुल, सेनापति तथा विश्वासपात्र सञ्जक की मूर्तियों का भी उल्लेख मिलता है।[१] कुछ लेखों में जीवित व्यक्तियों की मूर्ति स्थापना का भी विवरण मिलता है। अतः हमें लेखों द्वारा इन तीन धार्मिक प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालना है। यह वस्तुतः सत्य है कि सम्राट् में देवता का अंश माना गया है। जीवित अवस्था में उसमें कुल देवता का अंश है और मरने के बाद वह उसी में लीन हो जाता है। ऐसे कई लेख मिले हैं जिनमें सम्राट् को ही देवता का रूप मानकर लोगों ने अपना पुण्य तथा धन-सामग्री इत्यादि उसी को अर्पित कर दी है। एक लेख में[२] एक सेनापति द्वारा युद्ध में जीती हुई धन-सामग्री इत्यादि सम्राट् को भेंट दी गई है, क्योंकि सम्राट् की आत्मश्लाघता को ही ईश्वर माना है जो सोने की बनी लिंग में विराजमान है। एक अन्य लेख में महायान बौद्ध भिक्षुओं को आदेश

१—इस धार्मिक प्रतिक्रिया पर बहुत से विद्वानों ने अनुसंधान किया है। लेबी : सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३४, पृ० ६११ से ; बोश—यही पत्रिका : भाग २५, पृ० ३९१ ; कोड : हिन्दू राष्ट्र ; पृ० १७७ से ; मजुमदार : कम्बुज देश, पृ० ७७ से; चटर्जी : कम्बुज में भारतीय संस्कृति का प्रभाव, पृ० ७८ से ; वागची : भारतीय इतिहास पत्रिका, भाग ५, पृ० ७५४ से; भाग ६, पृ० ९७ से ; इलियट—हिन्दू धर्म तथा बौद्ध धर्म, पृ० ६४ से। लेखक ने भी इस विषय पर एक लेख कलकत्ता में भारतीय इतिहास परिषद् के अधिवेशन में पढ़ा।

२—देखिये न० १३९, पृ० ३४४ तथा न० १४८, पृ० ३५१ तथा पृ०६ १४।

दिया गया है कि वे अपने पुण्यों को सम्राट् के प्रति अर्पित कर दें। सूर्यवर्मन् प्रथम के समय में राजेन्द्र पण्डित और उसके छोटे भाई क्षितीन्द्र पण्डित ने अपने पुण्यों को सम्राट् के प्रति समर्पित कर दिया। वेयोन में वहाँ के समाधि-स्थान अधिपति शिवलिंग को "कम्रते जगत त राज" अथवा देवराज की उपाधि दी है।[१] इस लिंग में संचित राजशक्ति का अंश कम्बुज के राजाओं में भी पाया जाता था। देवराज का सम्बन्ध तन्त्रवाद से रहा होगा जैसे कि हमें स्डोक काक थोम के लेख[२] से पता चलता है। उस लेख में लिखा है कि हिरण्यदाम नामक ब्राह्मण को जो सिद्धि विद्या में पारंगत था, जनपद से इसलिए बुलाया गया कि कम्बुज के सम्राट् चक्रवतिन् हों और देश जावा से पूर्णतया स्वतन्त्र रहे। हिरण्यदाम ने कम्बुज देश आकर शिव कैवल्य को चार ग्रन्थ पढ़कर सुनाये। यह व्रह विनाशिख, नयोत्तर, सम्मोह और शिरस्छेद थे और इनको शिव कैवल्य ने लिख लिया। इन चारों ग्रन्थों को तुम्बुरू का चतुर्मुख कहा है। पहिले दो का तन्त्र से सम्बन्ध है। शिरस्छेद से कदाचित् उस धार्मिक वृत्ति का संकेत हो सकता है जिसके अनुसार पुरूष अपना शिर काट कर देवता के सम्मुख चढ़ा देता है जिससे वह उसी में लीन हो जाय और इसका चित्र भारतीय कला में मिलता है जिसका उल्लेख फोगेल[३] ने किया है। सम्राट् और देवता

१—इलियट : हिन्दू तथा बौद्ध धर्म, भाग ३, पृ० ११६।

२—मजुमदार : कम्बुज लेख, न० १५२, पृ० ३६२।

३—लन्दन के पूर्वीय तथा अफ्रीकी स्कूल की पत्रिका भाग ६, पृ० ५३९।

लोकेश्वर की विशाल मूर्ति

का स्वरूप एक था और मूर्तियों का निर्माण भी कभी-कभी सम्राट् के चित्र के आधार पर होता था।

सम्राट् और देवता को एक रूप मानकर इस धार्मिक प्रकृति ने जोर पकड़ा। लोगों में दो प्रकार की भावनाएँ होने लगीं—एक तो सम्राट् की ओर से अपने पूर्वजों तथा गुरूजनों की उनकी मृत्युपरान्त मूर्ति स्थापित करना, और दूसरी देवताओं को दानी के नाम से सम्बोधित करना। अतः हमें उन लेखों पर विचार करना है जो सम्राटों की ओर से लिखे गये और दूसरे वे जिनमें अन्य व्यक्तियों द्वारा मूर्ति स्थापना का उल्लेख है। यशोवर्मन् के लोले के लेख[१] में चार मन्दिरों के निर्माण का विवरण है। इनके नाम इन्द्रवर्मेश्वर, इन्द्रदेवी, महीपतीश्वर तथा राजेन्द्रदेवी थे। पहिले दो उसके पिता-माता तथा अन्य दो उसकी माँ के पिता-माता के नाम पर थे। जयवर्मन् के प्राखन के लेख[२] में बोधिसत्व लोकेश्वर की सुनहरी मूर्ति-स्थापना का उल्लेख है, जिसे उसके पिता की मूर्ति लिखा है और उसका नाम जयवर्मेश्वर था। बन्तेचमर के लेख[३] के साथ ११ अन्य छोटे लेख हैं, जिनमें कई देवी-देवताओं के नाम हैं जो दानियों के नाम पर दिये गये हैं, जैसे श्री विजयदेव (कुमार विजय), श्री वृद्धेश्वरी (धरणीन्द्रवर्मन् द्वितीय की सम्राज्ञी तथा जयवर्मन् सप्तम् की माँ) और श्री जय कीर्तिदेव जो जयवर्मन् का गुरू था। ता-प्रोम के लेख में जयवर्मन् की माँ की प्रज्ञापारमिता रूप में मूर्त्ति स्थापना

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० ७०, पृ० १३८।
२—यही न० १७८, पृ० ४७५।
३—यही न० १८३, पृ० ५२८ से।

का उल्लेख है। अंगकोर मन्दिर के एक लेख[१] में जयवर्मन् द्वारा जयमहाप्रधान तथा उसकी माँ से मिलती-जुलती एक मूर्ति-स्थापना का विवरण है। इसमें इनका नाम जय त्रिविक्रम महानाथ तथा जय त्रिविक्रम देवेश्वरी कहा है। धरणीन्द्रवर्मन् के एक लेख में[२] उसकी मृतक राज्ञी अथवा माँ की मूर्ति-स्थापना तथा पूजा का उल्लेख है। एक लेख में राजेन्द्रवर्मन् की पुत्री इन्दुलक्ष्मी, जो ब्राह्मण दिवाकर भट्ट को ब्याही थी, के अन्य दानों के अतिरिक्त अपनी माँ की एक मूर्ति-स्थापना का उल्लेख है।[३] बन्ते-श्राई लेख[४] में यज्ञवराह द्वारा दो सरस्वती तथा दो विद्या गुरुजनों की मूर्ति-स्थापना का उल्लेख है। प्रसतकोक के लेखानुसार[५] विष्णु वर द्वारा एक विष्णु की मूर्ति का निर्माण किया गया। इस देवता का नाम भी विष्णुवर पड़ा और आकृत भी दानी ने अपने समान रक्खी। जयवर्मन् सप्तम् ने अपने मातुल की मूर्ति स्थापित की।[६]

देवताओं के साथ माता-पिता, गुरू, मातुल इत्यादि की मूर्तियाँ स्थापित करने का चलन कम्बुज देश में बहुत था और इसका उद्देश्य पितृन् तथा गुरू व अन्य वृद्ध जनों की उपासना करना और उनको देवताओं के समान स्थान देना था। पर एक

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १९०, पृ० ५४० ।
२—यही न० १६४, पृ० ४२७ ।
३—यही न० १११, पृ० २८५ ।
४—यही न० १०८, अ भाग, पृ० २८१-२ ।
५—यही न० १२४, पृ० ३१२ ।
६—यही न० १८०, पृ० ५०३ ।

लेख में सेनापति त्रैलोक्यराज्य तथा दूसरे में सञ्जक अर्जुन व सञ्जक धर्मदेव की मूर्तियों की स्थापना का उल्लेख है।[१] इन सञ्जकों ने अपने स्वामी यशोवर्मदेव की भरतराहु के उपद्रव के समय प्राण देकर रक्षा की थी। उनको 'अमतेज्ञ' की उपाधि मिली और उनकी मूर्तियाँ भी मन्दिरों में स्थापित कर दी गईं। इनके अतिरिक्त सञ्जक श्री देव तथा श्री-वर्द्धन की भी मूर्तियाँ स्थापित की गईं। इस लेख में इनकी पूजा का उल्लेख नहीं है। अतः इससे यह प्रतीत होता है कि यह केवल स्मृति-चिह्न ही थे। मृतक व्यक्ति की स्थापना के अतिरिक्त जीवित व्यक्ति की भी मूर्ति स्थापित की जाती थी। एक लेख के अनुसार श्री महेन्द्रेश्वरी का नाम महेन्द्रलक्ष्मी नामक एक जीवित स्त्री पर पड़ा।

कम्बुज में देवराज अथवा देवता सम्राट् की उपासना सदैव ही रही। शिव कैवल्य के वंशज ही इस देवता के २५० वर्ष तक पुजारी रहे। शिव की लिंग-मूर्ति नगर में सबसे ऊँचे स्थान पर स्थापित की जाती थी और यह मूर्ति सम्राट् का प्रतीक तथा रक्षक होकर उसके साथ-साथ जाती थी। लेखों से यह प्रतीत होता है कि मूर्ति किसी एक स्थान पर स्थापित नहीं रही। बौद्ध धर्म ने भी इस प्रथा में हस्तक्षेप नहीं किया। स्वयं बौद्ध देवी-देवताओं में सम्राट् अथवा सम्राज्ञी का अंश प्रतीत होने लगा। जयवर्मन् सप्तं के समय में देवराज की भाँति बुद्धराज की एक बड़ी मूर्ति स्थापित हुई। देवराज की मूर्ति-स्थापना, उसका सम्राट् में अंश होना,

---

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १८३, पृ० ५२८।

मृत्यु के पश्चात् सम्राट् का अपनी दैनिक शक्ति में प्रवेश करना यह उस धार्मिक प्रकृति के अंग हैं जो सुदूर पूर्वीय देशों में प्रचलित थी और उसके साथ पूर्वजों की मूर्ति-स्थापना, उनकी पूजा तथा उनके नाम पर मूर्तियों की स्थापना भी इसी धार्मिक प्रकृति का एक अंग है। सेनापति अथवा सज्जकों की मूर्ति का निर्माण केवल स्मृति-चिह्न होता था। इसमें उपासना का भाव नहीं है पर यह केवल आदर्श सेवा का प्रतीक है। जीवित व्यक्तियों के नाम पर मूर्ति के नामकरण का उदाहरण भी मिलता है। ऐसे उदाहरण तत्कालीन भारतीय इतिहास में भी मिलते हैं, जैसे वाइल भट्ट स्वामिन् अथवा चक्रस्वामिन इत्यादि।[१] इलियट महोदय ने भी इस प्रकार की समानता दक्षिण भारत में पट्टाडकल क्षेत्र के दो मन्दिरों से की है। इनके नाम लोकेश्वर तथा त्रैलोकेश्वर हैं जो लोक महादेवी तथा त्रैलोक्य महादेवी सम्राज्ञियों के नाम पर हैं।[२]

यज्ञ तथा तप—लेखों में यज्ञ तथा तप का भी उल्लेख मिलता है। होता नामक व्यक्ति का राज्य में विशेष अधिकार था। शिवाचार्य चार सम्राटों—ईशानवर्मन् द्वितीय, जयवर्मन्, हर्षवर्मन् द्वितीय, तथा राजेन्द्रवर्मन् का होता था।[३] उदयादित्य वर्मन् का गुरु जयेन्द्रपण्डित था। इस सम्राट् ने बहुत से धार्मिक महोत्सव किये जिनमें भुवनाध्य और ब्रह्मयज्ञ भी

१—इस विषय में देखिये—भण्डारकार : उत्तरीय भारतीय लेख सूची न० ३५, तथा एपीग्राफिया इन्डिका भाग ३, पृ० २६० जिसमें लन्चुका के नाम पर देवता का लन्चुकेश्वर नामकरण किया गया है।

२—हिन्दू तथा बौद्ध धर्म, भाग ३, पृ० ११७।

३—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १२६, पृ० ३२२।

था। उसने ब्रह्मगुह्य के अनुसार महोत्सव पूजा भी की। सूर्यवर्मन ने शास्त्रोत्सव समारोह किया और पुरोहितों को बहुत दक्षिणा दी।[१] सम्राट् ने लक्ष होम तथा कोटिहोम भी किये। एक लेख[२] में पान्चरात्र नामक विष्णु सम्प्रदाय की यज्ञ विधियों में प्रवीण व्यक्ति का उल्लेख है। एक अन्य लेख में मध्य देशा नामक एक मालिनी द्वारा ब्रह्मयज्ञ करने का उल्लेख है।[३] यज्ञ के साथ तप के विषय में भी जानकारी प्राप्त होती है। ईशानदत्त नामक एक तपस्वी तथा कुभारम्भ की तपस्विनी माँ का उल्लेख भी लेखों में मिलता है।[४] नोम सण्डक के लेख में तपस्वियों के एक समुदाय के विषय में लिखा है।[५] एक अन्य लेख[६] में भिन्नाचल नामक एक योगी का नाम है जिसका सूर्यवर्मन् द्वितीय ने आदर किया था। एक अन्य लेख में महर्षि श्री महीधर वर्मन् का संग्राम नामक व्यक्ति की पुत्री उमा के साथ विवाह का उल्लेख है।[७] अतः ऋषि भी विवाह कर सकते थे। जयवर्मन् सप्तं की द्वितीय राज्ञी इन्द्रादेवी, जो बड़ी विदुषी थी, ने इन्द्रावर्मन् नामक व्यक्ति को तप करने से इसलिए रोका

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १६८, पृ० ४३१।
२—यही न० २७, पृ० ५६०।
पन्चरात्रार्चाचुन्चुना पञ्चभौतिकवेदिना ।।४।।
३—यही न० १३१, पृ० ६०४।
४—यही न० १८, पृ० २३।
५—यही न० १४७, पृ० ३५१।
६—यही न० १६३, पृ० ४२६।
७—यही न० १७५, पृ० ४५८।

कि वह स्वयं इसे कर चुकी थी।[१] कदाचित बौद्ध होने के कारण वह तप को महत्त्व नहीं देती थी। कुछ लेखों में तीर्थ-यात्रा का भी उलेख मिल्लता है।[२] एक लेख में जयवर्मन् की तीर्थ-यात्रा का विवरण है और दूसरे में एक स्थानीय तीर्थ-स्थान का उल्लेख है।

बौद्ध धर्म—कम्बुज देश में बौद्ध धर्म आरम्भ से ही प्रचलित हुआ। छठी शताब्दी के अन्त, अथवा सातवीं शताब्दी के आरम्भ के एक लेख में पों प्रज्ञा चन्द्र नामक एक व्यक्ति ने बोधिसत्व शास्ता, मैत्रेय तथा अवलोकितेश्वर के प्रति दास-दासियों को अर्पित किया।[३] शकसं० ५८७ के एक लेख[४] में भिक्षु रत्नभानु तथा भिक्षु रत्नसिंह का नाम तथा बुद्ध-धर्म और संघ का उल्लेख मिलता है। इन्द्रवर्मन् के राज्य-काल में त्रैलोक्यनाथ की एक मूर्ति की स्थापना की गई थी।[५] एक अन्य लेख में ब्राह्मण मूर्तियों के साथ तथागत की मूर्ति-प्रतिष्ठा का उल्लेख है।[६] एक दूसरे लेख में त्रिकाय-बुद्ध और लोकेश्वर की स्तुति की गई है।[७] कई अन्य लेखों में बुद्ध-धर्म, और संघ, लोकेश्वर, प्रज्ञापारमिता (बुद्ध की माँ)

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १८२, पृ० ५१५।
२—यही न० ६६, पृ० २२१।
३—आमोनिये : कम्बुज भाग १, पृ० ४४२; इलियट : हिन्दू तथा बौद्ध धर्म, भाग ३, पृ० १२०—शास्ता का शाक्यमुनि से कोई संबंध नहीं प्रतीत होता है।
४—मजुमदार : कम्बुज लेख, न० २६, पृ० ३७।
५—यही न० ५६, पृ० ७३।
६—यही न० ६०, पृ० ११६।
७—यही न० १८२, पृ० ५१५।
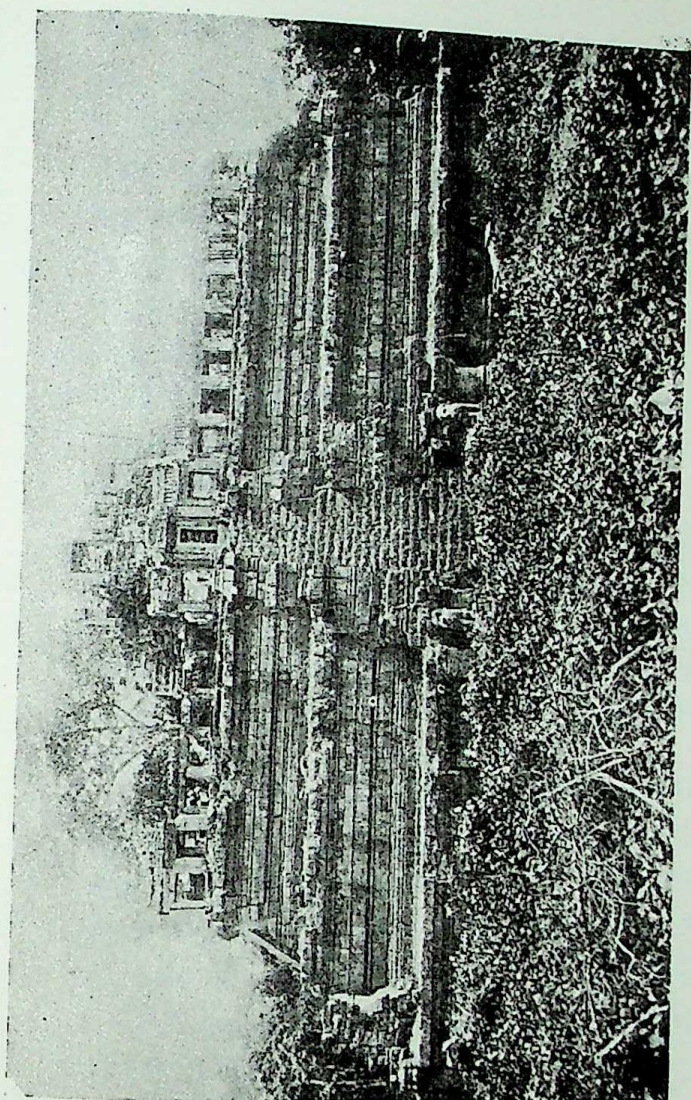
फिमेनक—श्रंगकोर थोम (ई० ९वीं शताब्दी—अन्तिम भाग)

मैत्रिय वज्रिन और इन्द्र का उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त लेखों में कई बौद्ध सम्राट्, सम्राज्ञी तथा मन्त्रियों का भी विवरण पाया जाता है।[१] सम्राटों में मुख्यतया सूर्यवर्मन् प्रथम तथा जयवर्मन् सप्तम् थे। सूर्यवर्मन् का मृत्युपरांत 'निर्वाण-पद' नाम पड़ा। जयवर्मन् की सम्राज्ञी इन्द्र देवी विदुषी थी और उसी के बौद्ध होने के कारण सम्राट् का भी बौद्ध धर्म की ओर झुकाव हो गया, यद्यपि शैवधर्म को वह तिलांजलि नहीं दे सका। मन्त्रियों में सत्यवर्मन्, कवीन्द्रारिमथन तथा कीर्ति पण्डित प्रमुख थे जिन्होंने बौद्ध धर्म के विकास में बड़ा प्रयास किया। सत्यवर्मन् का अंगकोर के फिमेनाक के निर्माण में हाथ था। कवीन्द्रारिमथन, राजेन्द्रवर्मन् द्वितीय तथा जयवर्मन् पंचम् का मन्त्री था और उसने बहुत सी बौद्ध मूर्तियों की स्थापना कराई। कीर्तिवर्मन् जयवर्मन् पंचम् का मन्त्री था और उसने बौद्ध चन्द्र को अन्धकार से निकाला। उसके समय में महाविभाग तथा तत्त्वसंग्रह की टीका बाहर से कम्बुज में आई। तारानाथ के वृत्तान्तानुसार वसुबन्धु के एक शिष्य ने हिन्द-चीन में बौद्ध मत फैलाया।[२]

बौद्ध धर्म ब्राह्मण मत में इतना मिश्रित हुआ कि बुद्ध को त्रिमूर्ति में स्थान मिल गया। प्रा-खन के सूर्यवर्मन् के लेख[३] में शिव तथा बुद्ध की स्तुति की गई है और इसी स्थान पर जयवर्मन् सप्तम् के लेख में लिखा है कि प्रयाग में तो केवल गंगा तथा यमुना तीर्थ-स्थान हैं, किन्तु जय श्री

१—मजुमदार : कम्बुज लेख, देखिये न० ५२ अ, १०० अ, ११३ अ, १३९, १४६।

२—इलियट : हिन्दू तथा बौद्ध धर्म, भाग ३, पृ० १२३।

३—मजूमदार : कम्बुज लेख न० १४९, पृ० ३६०।

नगरी में बुद्ध, शिव तथा विष्णु के तीर्थ-स्थान हैं ।[१] यशोवर्मन् ने भी शिव तथा वैष्णव आश्रमों के अतिरिक्त सौगताश्रम का निर्माण बौद्धों के लिए किया था और इसको भी अन्य दो आश्रमों की भाँति सुविधाएँ दी गई थीं । बौद्ध आश्रम में विद्वान् ब्राह्मण का आदर किया जाता था । एक लेख[२] में अश्वत्थ वृक्ष (ख्मेर में उसे बोधि वृक्ष लिखा है) की उपमा ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की त्रिमूर्ति से की गई है । ब्रह्मा वृक्ष की जड़, शिव उसका तना और विष्णु को उसकी शाखा लिखा है । यद्यपि महायान मत कम्बुज में बहुत पहिले ही पहुँच गया था और लोकेश्वर की स्तुति शक सं० ७१३-७९१ ई० के एक लेख में की गई है, तथापि हीनयान सम्प्रदाय का भी कम्बुज देश में प्रवेश हुआ ।[३] ईत-सिंह ने लिखा[४] है कि फ़नान में पहले बहुत से देवताओं की पूजा होती थी, फिर वहाँ बुद्ध का धर्म विकसित हुआ, पर उस समय में एक दुष्ट सम्राट् के कारण वहाँ पर बौद्ध नहीं रह गये थे ।

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १७८, पृ० ४८०, पाद २३ ।
किंकथ्यते बुद्धशिवाम्बुजाक्षतीर्थ प्रकृष्टा नगरी जयश्री ।

२—यही न० १८६, पृ० ५३१ ।

ब्रह्ममूल शिवस्कन्ध विष्णुशाख सनातन ।
वृक्षराज महाभाग्य सर्व्वाश्रय फलप्रद ।।१।।

३—देखिये : लेख न० १३९, पृ० ३४३–सूर्यवर्मन् प्रथम के इस लेख में सर्व पवित्र स्थान, मन्दिर, विहार, यति तथा स्थाविरो (जो हीनयान सम्प्रदाय के थे) तथा महायान भिक्षुओं को आदेश दिया गया है कि वे अपने तप का पुण्य सम्राट् को अर्पित कर दें । इस कार्य में जो बाधक होगा उसे दण्ड दिया जावेगा ।

४—तकाक्षु : पृ० १० ।

हीनयान मत का पुनः प्रवेश १३वीं शताब्दी में हुआ और इस बार लंका से हीनयान सम्प्रदाय आया। श्रीन्द्रवर्मन् के शक सं० १२३० के पाली में लिखित लेख[१] में श्री मालिनीरत्न लक्खी द्वारा स्थापित विहार में बुद्ध की एक मूर्ति स्थापित की गई। सम्राट् ने उस विहार के लिए चार गाँव दिये। कम्बुज में सीलोन के हीनयान सम्प्रदाय के प्रवेश का यह प्रथम उदाहरण है।

धार्मिक सहिष्णुता—कम्बुज देश का प्रारम्भिक इतिहास धार्मिक सहिष्णुता का युग था। भारत में ब्राह्मण और बौद्ध सम्प्रदाय एक साथ नहीं रह सके और बौद्ध धर्म को यहाँ से हटना पड़ा, पर कम्बुज में यह बराबर रहे। इसका मुख्य कारण यह था कि बौद्ध धर्म का प्रथक् अस्तित्व होते हुए भी वह ब्राह्मण धर्म का एक अंग बन गया, और बुद्ध भी ब्राह्मण त्रिमूर्ति में रक्खे गये। बहुत से लेखों में ब्राह्मण तथा बौद्ध देवी-देवताओं की एक साथ स्तुति की गई है। बौद्धों के विहारों में ब्राह्मणों का आदर होता था। इन दोनों सम्प्रदायों के व्यक्तियों ने धर्म को संकुचित क्षेत्र में नहीं रक्खा। जनता के हित का ध्यान रखते हुए बहुत से अस्पताल खोले गये और इन सब में बौद्ध और ब्राह्मणों का पूर्ण सहयोग था।

इलियट महाशय का कहना है कि दया दान के क्षेत्र में बौद्धों ने ब्राह्मणों से आगे बढ़ने का प्रयास किया।[२] कम्बुज देश के धार्मिक इतिहास में कटुता तथा वैमनस्य का स्थान न था और

१—मजुमदार : कम्बुज लेख न० १८८, पृ० ५३३।
२—हिन्दू तथा बौद्ध धर्म, पृ० १२४।

८०० वर्ष के इतिहास में एक भी उदाहरण नहीं मिलता कि विपक्षी धर्मावलम्बी को हानि पहुँचाई गई हो। इस देश के भग्नावशेष और प्राचीन मन्दिर इत्यादि इस सहिष्णुता की भावना के प्रतीक हैं।

अध्याय ६

भवन-निर्माण तथा वास्तु-कला

कम्बुज देश की कला-वृत्तियाँ भारतीय विषयों को लेकर बनाई गईं। लेखों में मन्दिर तथा गोपुरम् का उल्लेख मिलता है और उन प्राचीन भग्नावशेषों से प्रतीत होता है कि हम गुप्त काल के किसी मन्दिर को देख रहे हैं अथवा मवल्ली-पुरम् के रथों के निकट खड़े हैं। मूर्तियाँ भी भारतीय विषय तथा उसी परिपाटी के अन्तर्गत बनाई गई थीं।[1] इनके मुख, गम्भीर भाव, तथा वेष-भूषा से प्रत्यक्ष है कि यह भारतीय शिल्पकारों द्वारा निर्माणित की गई थीं। प्राचीन कला में, जिसे कुछ विद्वान् हिन्द-ख्मेर कला भी कहते हैं, भारतीय प्रभाव सबसे अधिक है और कुछ विद्वानों का विचार है कि दक्षिण भारत की पल्लव और यहाँ की ख्मेर कला एक ही शैली के समानान्तर रूप हैं, पर ग्रोसलिए[2] का विचार है कि

१—ग्रूसे : सुदूरपूर्व का इतिहास, भाग २, पृ० ५७२। इस विषय में पामांटिये ने सर्वप्रथम अध्ययन किया और इस ओर ध्यान आकर्षित किया (सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २३, पृ० ४१८)। बाकोफर का विचार है कि दक्षिण-पश्चिम भारत की भाँति उत्तरी भारत की कला भी सामुद्रिक मार्ग से सुदूरपूर्व में पहुँची और विभिन्न कलात्मक प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण फूनान में हुआ (वृहत्तर भारत-पत्रिका, भाग २ पृ० १२२-२७)। इस विषय में रेम्स ने भी अपने विचार लन्दन की भारतीय कला और साहित्य पत्रिका में प्रकाशित किये।

२—ख्मेर की पुरातात्विक कला, भाग २, पेरिस १९२४, तथा इसी

कम्बुज की सबसे प्राचीन भवन-निर्माण तथा वास्तु-कला-कृतियों को ख्मेर ' कहकर यदि स्वदेशी भारतीय कला कही जाय तो अनुपयुक्त न होगा । इस देश में भारतीय प्रभाव आँकने के लिए यह आवश्यक है कि हम कम्बुज की सम्पूर्ण कला-कृतियों का सूक्ष्म रूप से अध्ययन करें । यह कला भिन्न क्षेत्रों में फली-फूली और क्रमानुसार इसे तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—आदि ख्मेर अथवा हिन्द-ख्मेर कला, शास्त्रीय युग का प्रथम चरण (८००-१००० ई०) तथा शास्त्रीय युग का द्वितीय चरण (१०००-१४५० ई०) । कुछ विद्वानों ने द्वितीय काल की कला को इन्द्रवर्मन् कला कहकर सम्बोधित किया है ।[१]

आदि ख्मेर अथवा हिन्द-ख्मेर कला—कम्बुज देश की सबसे प्राचीन विभूतियाँ पूर्णतया भारतीय प्रतीत होती हैं । यह पाँचवीं, छठी तथा सातवीं शताब्दी की है और यह सम्बोर तथा प्राईकुल नामक स्थान में मिली हैं ।[२] यहाँ कोई ४० निर्माणों के भग्नावशेष मिले हैं । भवन-निर्माण के अन्तर्गत इस काल में प्रायः ईंटों का प्रयोग किया गया है ।[३] मन्दिरों में मूर्ति-स्थान अथवा गर्भ-गृह प्रथक् हैं और उनके साथ

का 'ख्मेर कला की उत्पत्ति पर विचार' नामक लेख में यह विचार प्रगट किये गये हैं (यहाँ ग्रोसलिये के विचार ग्रूसे की पुस्तक से उद्धृत किये गये हैं (पृ० ५७२) ।

१—पामांटिये—इन्द्रवर्मन् की कला—सुदूरपूर्व पत्रिका, १९१९ भाग १९ ।

२—रावलैण्ड : भारत की शिल्प तथा वास्तु-कला, पृ० २२५ ।

३—ईंटों के बने मन्दिरों का उल्लेख कम्बुज लेखों में मिलता है (देखिये, मजुमदार : कम्बुज लेख, न० २२, पृ० २७; न० ५८, पृ० ७१ ।

प्रदिक्षण-पथ नहीं है। मन्दिर चौकोर बने हैं और उनकी छत वेसर परिपाटी के अनुसार है जैसा कि मवल्लीपुरम् के भीम रथों की है। पामांतिये का कहना है कि यह पल्लवकाल की कला के प्रतीक हैं।[१] छत के ऊपरी भाग के निर्माण में तीन खण्ड हैं और एक दूसरे के बीच में कानिस चारों ओर गई हैं। बीच-बीच में चैत्य मेहराबें दिखाई गई हैं। बाहरी शोभा के लिए ईंटें अलंकृत की गई हैं। छत के लिए पत्थर का प्रयोग होता था। इन मन्दिरों में भारतीय कला का प्रभाव प्रतीत होता है। वयांग का मन्दिर इसी आधार पर निर्मा-णित किया गया है और उसकी समानता भारत के भूमारा मन्दिर से की जा सकती है। सम्बोर, प्राईकुख तथा वयांग के मन्दिर सबसे प्राचीन हैं। इस काल की मूर्तियाँ भी गुप्त-कालीन मूर्तियों से बहुत मिलती-जुलती हैं। उनके देखने से यही प्रतीत होता है कि वे भारतीय शैलरूपकारों द्वारा बनाई गईं। कम्बुज के लेखों में शिल्पी शब्द आया था।[२] तकेओ तथा प्राईक्रवास में मिली बुद्ध की मूर्तियाँ तथा सम्बोर के निकट मिली हरिहर की मूर्ति इस कला का सबसे उत्तम उदाहरण हैं। उनकी वेशभूषा गुप्तकालीन मूर्तियों की ऐसी है और उसी प्रकार की चुन्नत दिखाई गई है। मुख पर हँसता भाव है और आँखें खुली हुई हैं। कुछ विद्वानों का विचार है

१—देखिये ग्रूसे—सुदूरपूर्व का इतिहास, पृ० ५७३-४।

२—यशोधरपुरे रम्यं मन्दिरं विबुधप्रियः।
शिल्पविद् विश्वकर्म्मेव योऽनेनेन्द्रेण कारिता॥
पृ० ९६, पृ० २३१, पाद ९८

कि इन मूर्तियों का निर्माण भारतीय शिल्पज्ञों द्वारा हुआ ।[१]

शास्त्रीय युग की कला—इस युग की कला को इस कारणवश शास्त्रीय कहा गया है कि इसमें राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर निर्माण तथा वास्तु-कला में देशीय परिपाटी को अधिक स्थान मिला, यद्यपि भारतीय शैली का भी मिश्रित रूप में अनुकरण किया गया। कुछ विद्वानों का विचार है कि प्राचीन परम्परा के अनुसार—जिसमें लकड़ी तथा बाँसों का प्रयोग होता था—मन्दिरों का निर्माण हुआ।[२] इन मन्दिरों में कुछ विशेषताएँ पाई जाती हैं। ईंटों के स्थान पर पत्थर का प्रयोग होने लगा, बाहरी फाटक (फेसाड़) अलंकृत किया गया, तथा बरामदे बने जिससे उपासक मन्दिर की प्रदक्षिणा कर सके। नागों के स्थान पर मकर मुख अलंकृत प्रयोग हुआ। यद्यपि इस काल में बहुत से मन्दिर बने[३] पर यहाँ पर केवल लोले में यशोवर्मन् द्वारा निर्माणित मन्दिरों

१—ग्रोसलिये का कथन है कि कम्बुज देश की राष्ट्रीय कला-कृतियाँ वास्तव में ख्मेर कला की प्रतीक नहीं थीं वरन् वे भारतीय थीं। (संकेत ऊपर दिया जा चुका है।)

२—पामांटिये के विचार में लकड़ी के भवनों में बड़ा कमरा तथा बरामदा होता था और ऊपर की छत नुकीली ईंटों से पाटी जाती थी जो ऊपर की ओर छोटी होती जाती थी और इस प्रकार के पिरामिड कम्बुज, स्याम तथा बर्मा में अब भी पाये जाते हैं (ख्मेर वास्तु-कला का इतिहास : पूर्वीय कला-पत्रिका, १९३१, पृ० १४७)।

३—इस काल में अंगकोर के दक्षिण-पूर्व में रूले, बेयोन, वको तथा लोले के मन्दिरों का निर्माण निर्धारित किया जाता है। (ग्रूसे, सुदूरपूर्व इतिहास, पृ० ५७४)
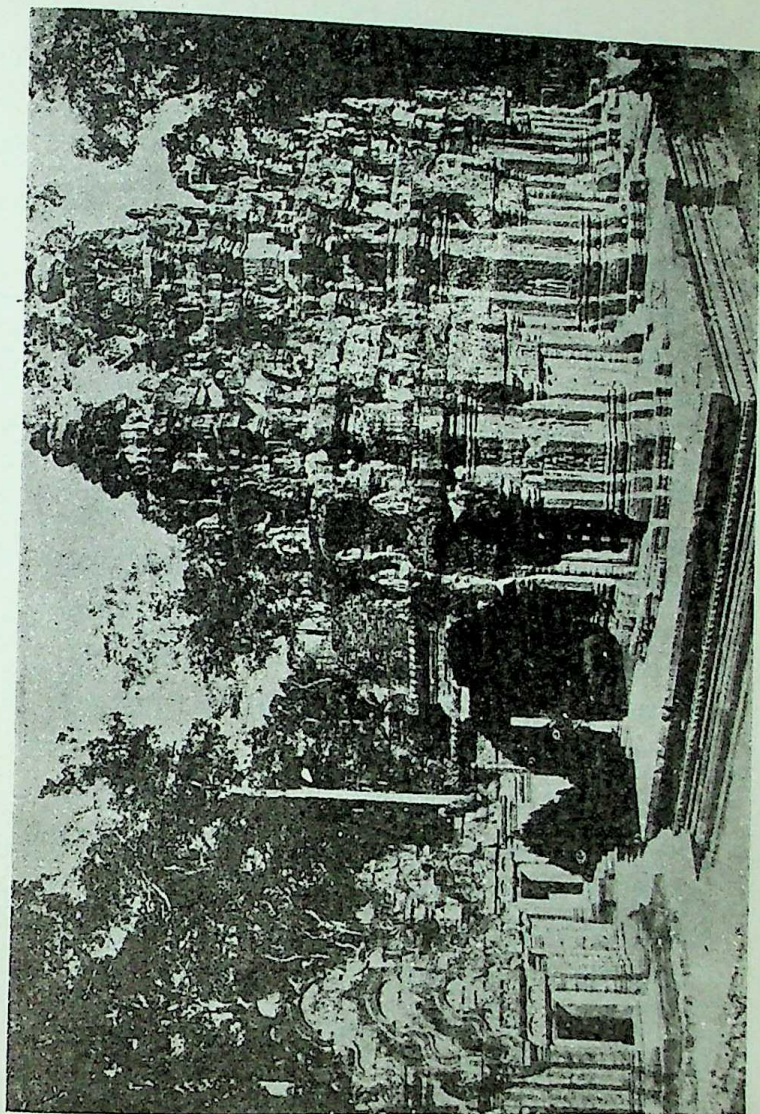
लोले के मन्दिर (ई० ९वीं शताब्दी)

का उदाहरण प्रस्तुत किया जायेगा जिससे विशेषताएँ दिखाई जा सकें। मन्दिरों में इनका आकार और शिखर ही प्रधान रक्खे गये हैं। लोले में शिव तथा पार्वती की मूर्ति स्थापित मन्दिरों में कई बातें उल्लेखनीय हैं। इनमें चारों ओर अलंकृत द्वार हैं जो बाहर की ओर निकले हुए हैं। द्वारों के ऊपर एक ऊँची चैत्याकार फलक है जिस पर मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। नीचे का आकार क्रास की तरह है। ऊपरी भाग में मन्दिर के खण्ड क्रमानुसार छोटे होते जाते हैं जैसे हम द्रविण मन्दिरों में भी पाते हैं। अन्त में ऊपर कलश है जो द्रविण आकार का प्रतीत होता है। यह मन्दिर एक ही सतह पर बने हैं पर इनका इससे अधिक सम्बन्ध नहीं है। इनके निचले भाग में पत्थर का प्रयोग हुआ है और ऊपरी भाग में ईंटों का। द्वार के ऊपर बाहवर्टी (लिन्टल) में पत्थर पर बड़ी सुन्दरता से पुष्पों की बेल कटी दिखाई गई है।

मन्दिरों के निर्माण में दो बातों पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। एक तो यह कि वह बड़ी ऊँचाई पर निर्माण किये जा सकें जैसा कि एक लेख में लिखा है[१] कि एक शिव-लिंग की स्थापना ८१ फिट की ऊँचाई पर हुई। दूसरी आवश्यकता यह थी कि मन्दिरों में एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में सुगमता हो। इन दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति की गई और बाद में इनको दृष्टिकोण में रखकर मन्दिरों का निर्माण हुआ। ऊँचाई पर मन्दिर की मूर्ति-स्थापना का सम्बन्ध देवराज से था जिसके अन्तर्गत सम्राट् को देवता का अंग

१—पिछले अध्याय में निर्देश हो चुका है।

माना जाता था, और उसकी मृतक मूर्ति को स्थापित किया जाता था। अंगकोर में क्रमानुसार कई काल के मन्दिरों का दिग्दर्शन किया जा सकता है।[१] यशोवर्मन् प्रथम ने नोम-बखेरा का मन्दिर स्थापित किया। दूर से यह प्रतीत होता है जैसे कोई पहाड़ी बनाई गई हो। इसमें पाँच खण्ड पर मन्दिर बने हुए हैं। यह साधारण है और सोपान के दोनों ओर सिंह बैठे हैं। यह मन्दिर पत्थर के बने हैं। फि-मेनाक नामक एक प्रासाद इस कला का प्रतीक है। तीन खण्ड की ऊँचाई पर एक बरामदा बना हुआ है जो कदाचित् यात्रियों के ठहरने अथवा सामान रखने के लिए बनाया गया होगा।

अंगकोर वाट--यह सूर्यवर्मन् द्वितीय के समय में निर्माणित किया गया था। सुदूर पूर्व में ब्राह्मण मत का यह सब से महत्त्वपूर्ण प्रतीक है और यह जावा के बेरबुद्र से किसी प्रकार कम नहीं है। इसका आकार चौकोर है और उसके चारों ओर कोई २½ मील परिधि की एक खाई है। इस मन्दिर का निचला भाग कोई ३,००० फीट लम्बाई और इतनी ही चौड़ाई के आकार का है और इसके चारों ओर बरामदे हैं जिनकी परिधि कोई आध मील के लगभग होगी। इनमें कोई २,५०० फीट तक चित्र खुदे हुए हैं जिनमें विष्णु-लीला तथा स्वर्ग और यमलोक का दिग्दर्शन कराया गया

१—रावलैण्ड का कथन है कि ख्मेर वास्तु-कला में समतल और खड़ेबल में भवन-निर्माण सम्बन्धी सदैव संघर्ष रहा। अन्त में एक केन्द्रीय ऊँचे स्थान पर बहुत से मन्दिर एक दूसरे के निकट बनाये गये, और एक स्थान से दूसरे स्थान जाने के लिए बरामदे भी बनाये गये। (भारतीय शिल्प तथा वास्तु-कला, पृ० २३१)
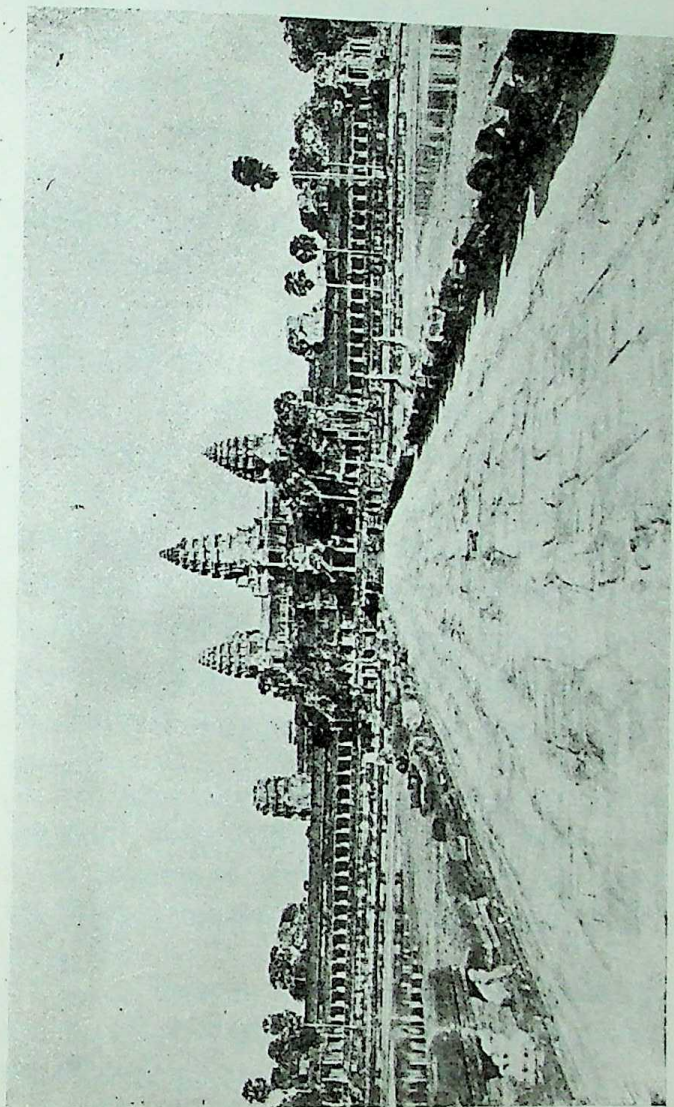
अंगकोर वाट का प्रसिद्ध मन्दिर (ई० १२वीं शताब्दी—अन्तिम भाग)

है। यहाँ से दूसरे खराड में चढ़ने के लिए चारों ओर सौपान हैं। ऊपर खुली जगह में क्रास रूपी आकार है। यहाँ से तीसरे खराड में चढ़ने के लिए चारों ओर से सीढ़ियाँ बनी हैं और तीसरे खण्ड में भी चारों ओर बरामदा चला गया है और चार मन्दिर हैं। यहीं पर बीच में बड़ा-सा पिरामिड़ आकार के मन्दिर का पृष्ठ भाग है और चारों ओर से उसमें जाने का रास्ता है। ऊपर के शिखर का भाग ६ खराडों में विभाजित है।[१] यह मन्दिर पत्थर का बना है और इसमें कहीं पर भी चूने का प्रयोग नहीं है और न यह पत्थर जोड़े गये हैं। निर्माण-कला का यह सब से सुन्दर उदाहरण है।

वास्तु-कला[२]—प्रारम्भिक ख्मेर कला में वास्तु-कला के प्रतीक कम मिलते हैं और जो कुछ मिले भी हैं वे गुप्त अथवा पल्लव शैली के हैं। इसके बाद लगभग ३०० वर्ष तक रामायण तथा महाभारत से चित्र अंकित किये गये। सोहवटी, फलक तथा आलों में मूर्ति-कला को पूर्ण स्थान दिया गया। अंगकोर वाट के बरामदों में खुदे हुए चित्र बहुत गहरे नहीं हैं फिर भी वे बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं। इन चित्रों में रामायण

१—विशेष अध्ययन के लिए कोड का 'अंगकोर वाट' नामक बृहत् ग्रन्थ देखिये। अंगकोर के शिखर भुवनेश्वर मन्दिरों के शिखरों से भिन्न है। ख्मेर वास्तु-कला का सुन्दर अध्ययन मारसेल की पुस्तक—'भारत और सुदूरपूर्व का वास्तु-कला की तुलना' नामक पुस्तक में की गई है (पेरिस १९४४)।

२—इस विषय पर ग्रोसलिये का प्राचीन ख्मेर मूर्ति-निर्माण-कला तथा इसी विद्वान् द्वारा लिखित ख्मेर की पुरातात्विक कला और ख्मेर की प्राचीन मूर्ति-कला विशेषतया उल्लेखनीय हैं।

की कथा, विष्णु और कृष्ण की लीला, तथा देवलोक और यमलोक के दृश्य दिखाये गये हैं। देवलोक तथा सम्बन्धी दृश्य का उद्देश्य यही रहा होगा कि दर्शक के हृदय में भक्ति और सकर्म की भावनाएँ उठें। अंगकोर थोम में वफौन तथा वयोन् में बहुत से सुन्दर चित्र अंकित हैं। बयोन में हाथी पर आरोहित एक सम्राट् तथा उसके सैनिकों को आगे बढ़ते दिखाया गया है। अंगकोर वाट में देवताओं तथा राक्षसों द्वारा समुद्र-मन्थन का सुन्दर चित्र है और वहीं पर अप्सराओं की मूर्तियाँ भी अंकित हैं जिनके मुखों पर मुसकान है और वे नृत्य-भाव प्रदर्शित कर रही हैं।

कला का अन्तिम युग—कम्बुज-कला के अन्तिम युग में जयवर्मन् सप्तम् का श्रेष्ठ स्थान है। बन्ते-श्राई का देव-स्थान कला की दृष्टि से अपूर्व है।[१] इसका निर्माण श्रीन्द्रवर्मन् के गुरू ने किया था। इसका आकार पहिले की भाँति क्रास-नुमा है। निचले भाग में द्वार के ऊपर चैत्याकार की फलक है जो पाँचों खण्डों में उसी प्रकार प्रदर्शित है। मन्दिर का ऊपरी भाग खण्डों में विभाजित है और खण्डों के बीच में चौकोर कानिस है जो चारों ओर चली गई है। मन्दिर का शिखर क्रमानुसार छोटा होता जाता है और कलश अन्य मन्दिरों की भाँति हैं। इस मन्दिर के बाहरी भाग में कोई भी स्थान छूटा नहीं है जो वास्तु-कला से अलंकृत न हो।

१—वान्ते-श्रे का मन्दिर पहले की नींव पर बनाया गया। यह अंगकोर थोम से १२-१३ मील उत्तर-पूर्व में है। मारसेल ने १९३१ से १९३६ के बीच में बड़े परिश्रम से इसे जोड़कर फिर से खड़ा किया।
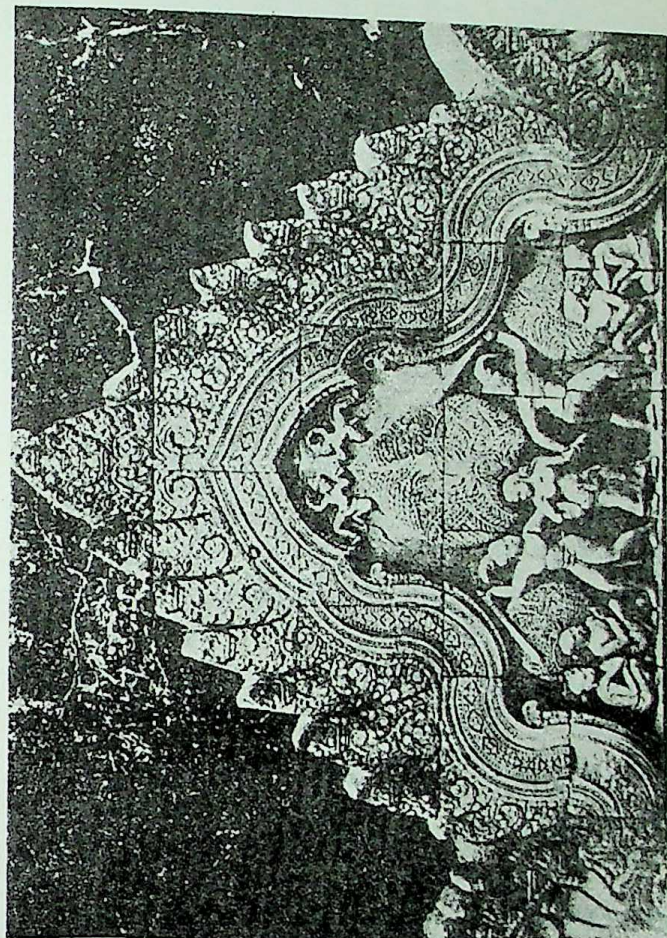
बन्ते श्राई गोपुरम् का एक दृश्य (ई० १४वीं शताब्दी—प्रथम भाग)

मन्दिर के निकट पुस्तकालय में एक चित्र है जिसमें रावण कैलाश को उठा रहा है। यद्यपि इसी प्रकार का चित्र एलोरा में भी मिलता है तथापि यहाँ के चित्र में मौलिकता है। इस काल की वास्तु-कला के चित्र वान्ते-प्राई में भी अंकित हैं। अन्य निर्माणों में जयवर्मन् द्वारा अंगकोर थोम हैं।[१] इसके अतिरिक्त बेयोन भी इस काल की कला का क्षेत्र था।[२] यहाँ के मन्दिर का निर्माण एक समय में नहीं हुआ। वर्तमान मन्दिर अन्तिम था जब यह महायान बौद्ध सम्प्रदाय को जयवर्मन् सप्तम् द्वारा अर्पित हुआ। बोधिसत्व लोकेश्वर का बड़ा मुख प्रत्येक दिशा में अंकित है।

कम्बुज कला पर भारतीय प्रभाव—यह पहिले कहा जा चुका है कि ख्मेर की प्राचीन कला पूर्णतया भारतीय थी। ऐसा विचार किया जाता है कि भारतीय शिल्पज्ञों ने इसमें भाग लिया। भवन-निर्माण तथा वास्तु-कला में गुप्त तथा मवल्लीपुर का प्रभाव प्रतीत होता है। शीघ्र ही देश में राज-नैतिक जागृति हुई और ११-१२ शताब्दी में यह कला अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई। उस समय कला का भारत से सम्बन्ध केवल धार्मिक विषयों तक ही रह गया। मन्दिरों का निर्माण अपने ढंग पर हुआ पर द्रविण मन्दिरों से समानता गोपुरम् तथा शिखर के आकार के सम्बन्ध में की जा सकती

१—१२-१५वीं शताब्दी के बीच यह ख्मेरों की अन्तिम राजधानी रही और इसमें पाँच बड़े गोपुरम् थे। पाँचवाँ गोपुरम् राज-प्रासाद को जाता था।

२—यह अंगकोर का केन्द्रीय मन्दिर था जिसका निर्माण देवराज के लिए हुआ था।

है। विषय क्षेत्र में भी कम्बुज देश की कला में मौलिकता का अभाव नहीं है। ख्मेर शिल्पज्ञों ने पिरामिड, शिखर तथा बरामदे (गैलरी) को अपने ढंग और शैली से विकसित किया। मन्दिरों में द्वार की ऊपर की फलक और आकार की मेहराब भारतीय चट्टान—कटे हुए बौद्ध मन्दिरों की मेहराब से मिलती है। इस सम्बन्ध में रेम्स[१] ने विशेष अध्ययन कर लिखा है कि यद्यपि प्राचीन कम्बुज देश में भारतीय कला का पूर्ण प्रभाव रहा, पर उत्तरार्द्ध ख्मेर कला अपने ढंग से विकसित हुई। इन कलाकारों का क्षेत्र भारतीय ग्रन्थों से उद्धृत चित्र तथा मूर्तियों और उनकी स्थापना के लिए मन्दिरों का निर्माण तक ही सीमित था, पर वे अपने प्रयास में पूर्णतया सफल हुए।

१—ख्मेर कला और उसका विकास—पेरिस १९४०।
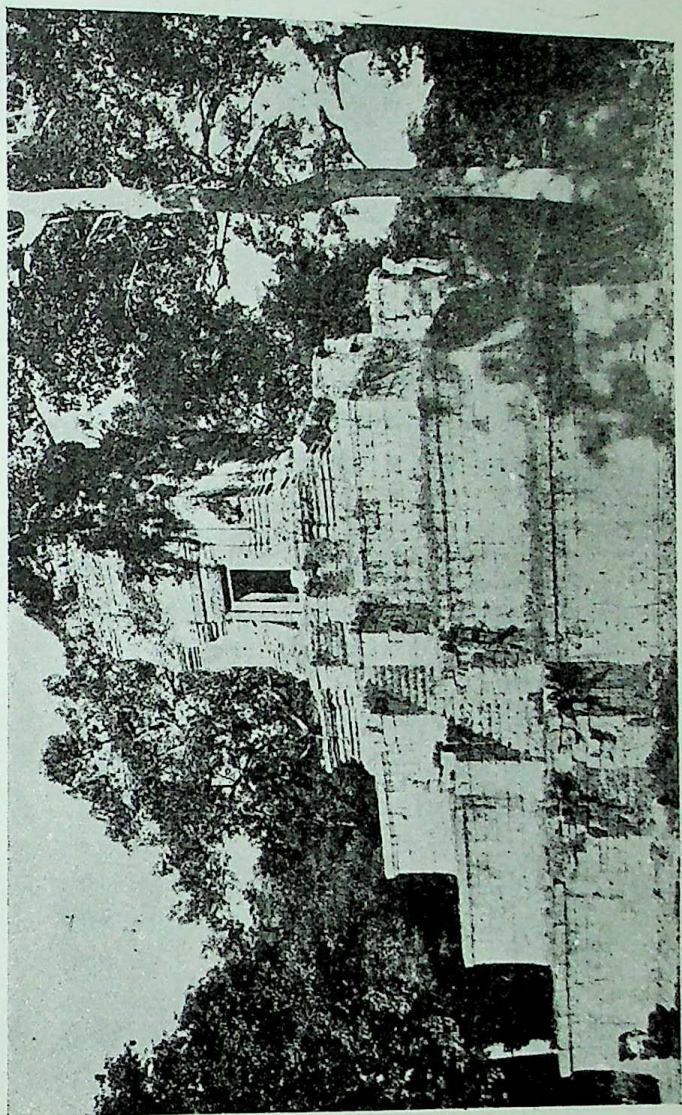
बकसेई चमक्रांग का मन्दिर (ई० ९वीं शताब्दी—मध्य भाग)

ग्रन्थ-सूची

विशेष अध्ययन के लिए

मूल ग्रन्थ, लेख, पुस्तकें

१. वार्थ तथा वेरगेन—कम्बुज तथा चम्पा के संस्कृत लेख, पेरिस १८८५-१८९३

२. बार्थ तथा वेरगेन—कम्बुज लेख, ३ भाग, पेरिस १९२६-२७।

३. कोड—कम्बुज के लेख, भाग १-४, पेरिस १९३७।

४. मजुमदार—कम्बुज के लेख, कलकत्ता १९५३।

५. फिनो—अंगकोर से प्राप्त लेख, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २५, २८, २९।

६. फिनो—कम्बुज लेख, भाग ५, पेरिस १९३१।

७. कोड—फूनान के दो प्राचीन लेख, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३१।

८. कोड और पामांतिये—चम्पा तथा कंम्बुज के लेख और भग्नावशेषों की सूची, पेरिस १९२३।

इतिहास तथा संस्कृति—(अ) पुस्तकें

१. आमोनिये—प्राचीन कम्बुज का इतिहास, पेरिस १९२०।

२. बिगो—हिन्द-चीन की जातियों का सूक्ष्म रूप से अध्ययन-हनोई १९३८।

३. कोड—हिन्द-चीन और हिन्दनेशिया के हिन्दू राष्ट्र, पेरिस १९४८।

४. चटर्जी—सुदूरपूर्व में भारतीय संस्कृति का विकास, कलकत्ता १९२८।

५. बागची—पूर्व आर्य पूर्व द्राविण भारत, कलकत्ता १९२९।

६. छाबरा—आर्य संस्कृति का पल्लव काल में विकास, कलकत्ता १९३५।

७. क्रोम—हिन्दू, जावानी इतिहास।
८. मजुमदार—कम्बुज देश, मद्रास १९४४।
९. मजुमदार—चम्पा, लाहौर १९२७।
१०. मजुमदार—सुवर्णद्वीप, भाग १-२, कलकत्ता १९३७।
११. मजुमदार—सुदूरपूर्व में भारतीय संस्कृति का विकास, कलकत्ता १९४४।
१२. मलेर—हिन्द-चीन की जातियाँ, सेगाँव १९३७।
१३. इलियट—हिन्दू धर्म तथा बौद्ध मत, भाग १-३।
१४. प्रिज़ूलेसकी—फ्रांसीसी हिन्द-चीन की जातियाँ, पेरिस १९३१।
१५. मासपेरो—चम्पा का राज्य।
१६. ब्रिग्स—प्राचीन ख्मेर साम्राज्य, फिलॉडेल्फिया १९५१।
१७. बोस—कम्बुज का हिन्दू उपनिवेश, मद्रास।
१८. मे—दक्षिणी-पूर्वी एशिया का इतिहास।

(ब)—प्रकाशित लेख

१. कोड—बेयोन के संस्कृत लेखों की लिपि, भारतीय इतिहास पत्रिका, १९४०।
२. कोड—अंगकोर के राजाओं के विषय में किंवदन्तियाँ, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २०।
३. कोड—नागी की कहानी, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ११।
४. कोड—चेन-ला का प्राचीन स्थान, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २७, २८।
५. कोड—फूनान के अन्त के सम्बन्ध में विचार, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ४३।
६. कोड—भववर्मन् द्वितीय के लेख, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ४।
७. कोड—जल चेन ला के विषय में, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३६।
८. कोड—जयवर्मन् द्वितीय की राजधानियाँ, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २८।
९. कोड—हिन्दनेशिया के शैलेन्द्र राजाओं के विषय में विचार, बृहत्तर भारत पत्रिका, भाग १।

१०. कोड—नोमवयाँग का एक नया लेख, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ११।
११. कोड—ईशनवर्मन् द्वितीय की तिथि, बृहत्तर भारत पत्रिका, भाग ३।
१२. कोड—खो ख्मेर की तिथि, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३१।
१३. कोड—हिन्द-चीन में बौद्ध धर्म संबंधित एक पत्र, टोकियो १६४२।
१४. कोड—उदयादित्यवर्मन् प्रथम का एक लेख, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ११।
१५. कोड—ख्मेर बृहत् स्माशानिक भग्नावशेष, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ४०।
१६. कोड—जयवर्मन् सप्तम के अस्पताल, यही।
१७. कार्पले—बृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति का प्रभाव—लन्दन की कला तथा साहित्य पत्रिका, भाग १।
१८. क्रोम—हिन्दू-जावानी इतिहास।
१९. चटर्जी—वृहत्तर भारत के क्षत्री—ओझा ग्रन्थ।
२०. चटर्जी—कम्बुज में तन्त्रवाद—माडर्न रिव्यू १६३०।
२१. चटर्जी—कम्बुज ऐतिहासिक खोज में प्रगति, बृहत्तर भारत पत्रिका, भाग ६।
२२. जयवर्मन् सप्तम्—भारतीय इतिहास परिषद्, १६३६।
२३. डूपो—हिन्द-चीन में विष्णु—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ४१।
२४. डूपो—चेन-ला-का अन्त, यही, भाग ४३।
२५. फिनो—हिन्द-चीन में भारतीय संस्कृति का प्रादुर्भाव, सुदूर-पूर्व पत्रिका, भाग १२।
२६. फिनो—हिन्द-चीन के हिन्दू-राज्य, भारतीय इतिहास पत्रिका, १६२५।
२७. फिनो—मी-सोन का लेख, यही, भाग ४।
२८. फिनो कांपाग रूसे का लेख, यही, भाग १८।
२९. फिनो—हिन्द-चीन में लोकेश्वर, ऐशियाटिक अध्ययन, भाग १।
३०. फिनो—स्डोकाक का लेख, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग १५ तथा ४३।

३१. फिनो—हिन्द-चीन में बौद्ध मत, भारतीय इतिहास पत्रिका, १९२६।
३२. फेरोड—कुएन-लुएन और दक्षिणी सामुद्रिक यातायात, पैरिस की ऐशियाटिक सभा की पत्रिका, १९१९।
३३. गोलोव्यू—नागी तथा अप्सराओं की कथायें, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग २४।
३४. लेवी—पूर्व आर्य तथा पूर्व द्राविण भारत, पैरिस की ऐशियाटिक सभा की पत्रिका, १९२३।
३५. लेवी—रामायण का ऐतिहासिक अध्ययन, यही पत्रिका १९१८।
३६. लेवी—कनिष्क और शातवाहन, यही १९३६।
३७. मजुमदार—मलय देश, बृहत्तर भारत पत्रिका, भाग ३।
३८. मजुमदार—कम्बुज का सूर्यवर्मन् प्रथम, बृहत्तर भारत पत्रिका।
३९. मासपेरो—आनाम और कम्बुज की सीमा, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग १८।
४०. नीलकण्ठ शास्त्री—भारत और चीन का प्रारम्भिक व्यापार, भारतीय इतिहास पत्रिका, १९३८।
४१. नीलकण्ठ शास्त्री—शैलेन्द्रो का मूल स्थान।
४२. पिलियो—फूनान—सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३।
४३. पिलियो—कम्बुज की वेश-भूषा।
४४. पिलियो—दो यात्रायें—सुदूरपूर्व पत्रिका—४।
४५. पिलियो—हिन्द-चीन सम्बन्धी चीनी ग्रन्थ, ऐशियाटिक अध्ययन भाग २।
४६. भट्टाचार्य—समतट के पूर्व, भारतीय इतिहास पत्रिका, भाग ४।
४७. स्टर्न—हरिहालय और इन्द्रपुर, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३८।
४८. स्टर्न—अमरेन्द्रपुर, यही, भाग २४।
४९. श्री निवासचारी—फूनान और कम्बुज में भारतीय संस्कृति, मद्रास की प्राच्य सभा की पत्रिका, भाग २।
५०. शर्मा दशरथ—भववर्मन् का लेख और कालिदास, आंध्र इतिहास सभा की पत्रिका, भाग ९।

५१. विश्वनाथ—हिन्द-चीन सामाजिक जीवन में द्राविण प्रभाव, भारतीय इतिहास पत्रिका, भाग १०।

कला तथा पुरातत्त्व : पुस्तकें तथा लेख

१. कोड—ख्मेर ब्रांज कला, ऐशियाटिक कला, पेरिस १९२३।
२. कोड—अंगकोर के निकट में प्राचीन स्थान, कर्म सभा की पत्रिका, १९३०।
३. कोरल रेमूस, ख्मेर कला, पेरिस १९४०।
४. डगस—अंगकोर की नई खोज, लन्दन की ऐशियाटिक सभा की पत्रिका, १९३२।
५. फिनो—ईश्वरपुर का मन्दिर, पेरिस १९२६।
६. फिनो—अंगकोर।
७. ग्रोसलिये—अंगकोर-पेरिस १९२४।
८. ग्रोसलिये—ख्मेर कला-कृतियाँ, पेरिस १९२५।
९. ग्रोसलिये—नोपेन्ह के संग्रहालय में ख्मेर मूर्तियाँ, पेरिस १९३१।
१०. ग्रूसे—सुदूरपूर्व का इतिहास, भाग २, पेरिस १९२७।
११. ले गे—अंगकोर वाट का मन्दिर, पेरिस, १९३०-२।
१२. लाम्रोकिये—कम्बुज के पुरातात्विक स्थान, १९०१, १९११।
१३. मारचल—अंगकोर के मन्दिर, पेरिस १९२८
१४. मारचल—भारत और सुदूरपूर्व की वास्तु-कला समतुलन, पेरिस १९४४।
१५. मारचल—ख्मेर कला, माडर्न रिव्यू, भाग ४३।
१६. पामांतिये—ख्मेर वास्तु-कला, पूर्वीय कला, भाग ३।
१७. स्टर्न—अंगकोर का वयान मन्दिर और ख्मेर कला का विकास, पेरिस १९२७।
१८. डाले—कम्बुज में पुरातात्विक खोज, सुदूरपूर्व पत्रिका, भाग ३६
१९. ज़िमर—ऐशियाटिक कला।
२०. वाकोफर—फूनान पर भारतीय कला का प्रभाव। बृहत्तर भारत पत्रिका, भाग २।

संक्षिप्त अनुक्रमणिका

लेखक परिचय

प्रो० बी० एन० पुरी भारतीय इतिहास के
अध्येताओं में से एक हैं, एवं कई दशकों से भारत
पर लिख रहे हैं। प्रोफेसर बी० एन० पुरी ने
शोधपत्र और लेख लिखे हैं। उनकी पुस्तकें "इं
टाइम आफ पतान्जलि" और "द हिस्ट्री आफ द गुर्ज
और "इण्डिया अन्डर द कुषाणा" ने उन्हें अंतर
प्रदान की है। देश-विदेश के अनेक विश्वविद्याल
सम्मानित भी किया है। वे भारतीय इतिहास कांग्रे
सत्र के अध्यक्ष भी रह चुके हैं। ७८ वर्ष की आयु
सक्रिय रूप में लेखन में व्यस्त हैं। उनकी आने
हैं "द कुषाणा इन इण्डिया एन्ड सेंट्रल एशिया"
मैटर्स एन्ड मूवमेन्टस" और "भगवत् गीता
लाईफ"।